2

दूसरा हिस्सा

हुसैनी क्रांति

अच्छाईयों का प्रचार-बुराईयों की रोकथाम



शहीद

मुर्तज़ा मुतह्हरी

2

हुसैनी क्रांति

अच्छाईयों का प्रचार

बुराईयों की रोकथाम

आयतुल्लाह शहीद मुर्तज़ा मुतह्हरी

अनुवाद

अब्बास असग़र शबरेज़

किताब : हुसैनी क्रांति (2)
अच्छाईयों का प्रचार और बुराईयों की रोकथाम

लेखक : आयतुल्लाह शहीद मुर्तज़ा मुतहहरी

अनुवाद : अब्बास असग़र शबरेज़

पहला प्रिन्ट : जून 2018

तादाद : 2000

पब्लिशर : ताहा फ़ाउंडेशन, लखनऊ

प्रेस : न्यु लाइन प्रॉसेस, दिल्ली

क़ीमत : 40 रूपए

+91- 8127 79 3428
9956 62 0017



करबला पहुंचने से पहले...

इमाम हुसैन[अ०] कूफ़े की तरफ़ आगे बढ़ ही रहे थे कि रास्ते में उनकी आँख लग गई। रास्ता चलते–चलते अपने घोड़े की गर्दन या काठी पर ही अपना सर रखकर सो गए थे। अभी कुछ ही पल बीते थे कि उठकर बैठ गए और बोलेः *इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजेऊन*

जैसे ही इमाम हुसैन[अ०] ने यह कहा वैसे ही हर एक आपस में पूछने लगा कि इमाम ने इस वक़्त यह बात क्यों कही है? क्या कोई नई ख़बर आई है? बहरहाल हज़रत अली अकबर[अ०] ने ही पूछा कि बाबा! क्या बात है, आपने इस वक़्त ऐसा क्यों कहा?

इमाम हुसैन[अ०] ने जवाब दिया कि बेटा! मैंने अभी ख़्वाब में एक आवाज़ सुनी थी। कोई कह रहा था कि एक काफ़िला जा रहा है लेकिन यह मौत है जो इस क़ाफ़िले को खींचे लिए जा रही है। जो आवाज़ मैंने अभी सुनी है उससे मैं यह समझ रहा हूँ कि अब मौत हमारे सर पर आ पहुँची है। अब हम सब उस मौत की तरफ़ बढ़ रहे हैं जिसका आना तय हो गया है।

इमाम हुसैन[अ०] ने जैसे ही यह बात कही तो हज़रत अली अकबर[अ०] ने फ़ौरन कहा कहा कि बाबा! क्या हम हक़ पर नहीं हैं? क्या हम सच्चे रास्ते पर नहीं हैं?

इमाम[अ०] ने कहा कि बेटा! क्यों नहीं! हम हक़ पर ही हैं।

फ़ौरन बेटे ने कहा कि बाबा! जब ऐसा है तो फिर अब आगे मौत हो या ज़िन्दगी, क्या फ़र्क़ पड़ता है। असल बात यह है कि हम सीधे रास्ते पर चल रहे हैं।

इमाम हुसैन[अ०] ने अपने बेटे की यह बातें सुनी तो बड़े ख़ुश हुए और कहा कि बेटा! मैं तो तुम्हारे जैसे लायक़ बेटे को कुछ भी नहीं दे सकता लेकिन मेरी अल्लाह से दुआ है कि ऐ अल्लाह! तू मेरी जगह इस लायक़ बेटे को वह सब दे दे जो इसे मिलना चाहिए।

Contents

अपनी बात

करबला एक ऐसी एतिहासिक घटना है जिसकी रौशनी और जिसकी किरनें आज 1400 साल बाद भी सारी दुनिया पर पड़ रही हैं बल्कि जितना वक़्त आगे बढ़ता जा रहा है उतना इमाम हुसैन[अ०] का चेहरा निखरकर सामने आता जा रहा है और लोग उन्हें पहचानते जा रहे हैं।

करबला के अंदर ऐसा क्या है कि लोग 1400 साल के बाद भी इसे भुला नहीं पा रहे हैं जबकि दुनिया की बड़ी से बड़ी घटना को लोग कुछ ही साल या कुछ ही सदियाँ बीतने के बाद भुला देते हैं और अगर याद भी रखते हैं तो बस इतिहास की किताबों के अंदर ?

इस सवाल का जवाब बिल्कुल आसान है कि इमाम हुसैन[अ०] ने करबला में वह कर दिखाया है जो उसके बाद फिर कोई दूसरा नहीं कर पाया यानी इमाम हुसैन[अ०] ने अपना सब कुछ अल्लाह के नाम पर निछावर कर दिया था और अपने लिए कुछ भी नहीं बचाया था। इमाम हुसैन[अ०] को न अपने नाम की परवाह थी, न दौलत की और न हुकूमत की। इमाम हुसैन[अ०] ने मदीना छोड़ते वक़्त साफ़-साफ़ अपनी वसिय्यत में लिख दिया था कि मैं रास्ते से हट चुकी अपने नाना की उम्मत को बचाने के लिए निकल रहा हूँ और अपने इस काम का नाम उन्होंने *अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर* रखा था यानी इमाम समाज में अच्छाईयों को फैलाने और बुराईयों का सफ़ाया करने के लिए अपना घर छोड़ रहे थे।

जो किताब आपके हाथों में है इसमें आयतुल्लाह शहीद मुतह्हरी ने यह साबित किया है कि करबला की क्रांति में *अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर* वह फ़ैक्टर है जिसकी वजह से यह क्रांति दुनिया की दूसरी सारी क्रांतियों से अलग दिखाई पड़ती है। इस फ़ैक्टर ने इस क्रांति को आसमान की ऊँचाईयों पर पहुँचा दिया है। करबला की क्रांति के पीछे और भी दूसरे फ़ैक्टर थे लेकिन यह फ़ैक्टर सब से ऊपर है और अकेला यही एक फ़ैक्टर ऐसा है जिसके बारे में इमाम हुसैन[अ०] ने जगह-जगह बात की थी। दूसरे और फ़ैक्टर भी थे लेकिन मदीने से लेकर मक्का, कूफ़ा और करबला के बीच में कहीं भी इमाम हुसैन[अ०] ने उनके बारे में कोई बात नहीं की जिसका सीधा सा मतलब यही है कि इमाम हुसैन[अ०] इस फ़ैक्टर से हटकर किसी दूसरे फ़ैक्टर को कोई जगह दे ही नहीं रहे थे। इमाम हुसैन[अ०] का कहना बस यह था कि मैं *अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर* करने जा रहा हूँ यानी इस्लामी समाज में आए बिगाड़ को ठीक करने जा रहा हूँ।

उम्मीद है कि यह किताब हमें इमाम हुसैन[अ०] और उनके मिशन को समझने में काफ़ी मदद देगी।

किताब छपती है तो उसमें कहीं न कहीं कमियाँ या ग़लतियाँ रह ही जाती हैं। यह किताब आपके हाथों में है। इसे पढ़ने के बाद जो कमियाँ आपको दिखाई दें वह हमें ज़रूर बताईए ताकि अगले एडिशन में उन्हें दूर किया जा सके।

ताहा फ़ाउंडेशन

लखनऊ

(1)
करबला में **अम्र बिल मारूफ़** और **नही अनिल मुन्कर**[1]

बेशक! अल्लाह ने ईमान वालों से उनकी जान व माल को जन्नत के बदले में ख़रीद लिया है क्योंकि यह लोग अल्लाह के लिए जिहाद करते हैं और दुश्मनों को क़त्ल करते हैं और फिर ख़ुद भी क़त्ल हो जाते हैं। यह वह सच्चा वादा है जो तौरेत, बाइबिल और क़ुरआन यानी हर जगह बताया गया है और अल्लाह से बढ़कर अपने वादे को पूरा करने वाला भला कौन होगा? तो अब तुम लोग अपनी इस तिजारत (कारोबार) पर ख़ुशियाँ मनाओ जो तुम ने अल्लाह के साथ की है क्योंकि यही सब से बड़ी कामयाबी है।

यह लोग तौबा करने वाले, इबादत करने वाले, अल्लाह की हम्द (तारीफ़) करने वाले, अल्लाह

---

[1] अच्छाईयों की तरफ़ बुलाना और बुराईयों से रोकना

के लिए सफ़र करने वाले, रूकू करने वाले, सजदे करने वाले, अच्छाईयों का हुक्म देने वाले, बुराईयों से रोकने वाले और अल्लाह की हदों (क़ानून) को बचाने वाले हैं। ऐ रसूल! आप इन लोगों को जन्नत की ख़ुशख़बरी दे दीजिए।[1]

हम हुसैनी क्रांति में अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर *(अच्छाईयों की तरफ़ बुलाना और बुराईयों से रोकना)* नाम के फ़ैक्टर पर बात कर रहे हैं।

यहाँ सब से पहला सवाल यह उठता है कि क्या हुसैनी क्रांति में अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर वाले फ़ैक्टर का कोई रोल है भी या नहीं? इस सवाल को यूँ भी दोहरा सकते हैं कि जिन चीज़ों ने इमाम हुसैन[अ०] को आशूरा जैसी क्रांति लाने पर मजबूर किया क्या उन में अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर वाला फ़ैक्टर भी आता है या नहीं?

दूसरा सवाल यह है कि अगर हुसैनी क्रांति में अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर का कोई रोल है तो फिर वह रोल कितना बड़ा है?

हम सभी यह बात अच्छी तरह से जानते हैं कि इमाम हुसैन[अ०] की अज़ादारी करने और हर साल इसे फैलाने पर मासूम इमामों ने इसी लिए इतना ज़ोर दिया है क्योंकि इस अज़ादारी में सीखने-सिखाने और जीने का रास्ता पाने के लिए बहुत कुछ है। हुसैनी क्रांति एक ऐसी एतिहासिक घटना है जिसमें सीखने-सिखाने के लिए बहुत कुछ है। अगर आदमी किसी भी चीज़ से कुछ सीखना चाहता है तो सब से पहले पहले उस चीज़ को अच्छी तरह से समझना और अपने दिमाग़ में उतारना बहुत ज़रूरी है।

---

[1] सूरए तौबा/111-112

अब हम यहाँ पर उन फ़ैक्टर्स के बारे में थोड़ी सी बात करेंगे जिन्होंने इस हुसैनी क्रांति को शुरू करने में अपना रोल निभाया है। उसके बाद आख़िर में अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर पर बात करेंगे जो इस क्रांति का असली फ़ैक्टर है।

हुसैनी क्रांति के पीछे कई फ़ैक्टर दिखाई देते हैं और यही वह चीज़ है जिसकी वजह से इतिहास की इतनी बड़ी घटना यानी आशूरा समझने के हिसाब से बड़ी पेचीदा हो गई है जबकि अगर इतिहास की आँखों से देखा जाए तो यह पूरी घटना कोई बहुत लम्बी-चौड़ी नहीं है। आशूरा के बारे में जो इतनी सारी बातें कही गई हैं और कई बार इस महान घटना से ग़लत मतलब भी निकाला गया है वह सब इस घटना के पीछे दिखाई देने वाले बहुत सारे फ़ैक्टर्स की इसी पेचीदगी और उलझावे की वजह से ही है। अगर हम आशूरा पर नज़र डालें तो हमें एक साथ बहुत सारी चीज़ें दिखाई देती है। कहीं पर इमाम हुसैन[अ०] से मांगी जाने वाली बैअत और इमाम हुसैन[अ०] की तरफ़ से उसका इंकार दिखाई देता है। कहीं हम देखते हैं कि कूफ़े वाले इमाम हुसैन[अ०] को अपने यहाँ बुला रहे हैं और इमाम वहाँ जाने के लिए तैयार भी हैं। कहीं हमें इन सारी बातों से हटकर एक दूसरा ही मामला दिखाई देता है जिसके बाद इमाम हुसैन[अ०] न बैअत वाले फ़ैक्टर पर ध्यान देते हैं और न कूफ़े वालों के बुलावे पर बल्कि इमाम उस वक़्त की हुकूमत पर उंगली उठाते हुए दिखाई पड़ते हैं और लोगों को बताते हैं कि मुझे मुसलमानों के समाज में आए हुए इस बिगाड़ को दूर करना है, इमाम उन्हें यह भी बताते हैं कि इस्लाम को पूरी तरह से बदल दिया गया है, अल्लाह के हलाल को हराम और हराम को हलाल किया जा रहा है। इमाम हुसैन[अ०] सब लोगों से

मिल रहे हैं और उन्हें बता रहे हैं कि हालात बहुत बिगड़ गए हैं और इन हालात में हर मुसलमान की इस्लामी ड्युटी यह है कि वह चुप न बैठे बल्कि इस हुकूमत को उखाड़ फैंकने के लिए मैदान में आ जाए। यह वह जगह है जहाँ इमाम हुसैन[अ०] न यज़ीद की बैअत की बात करते हैं और न कूफ़े वालों के बुलावे की।

असली मामला क्या था? क्या यज़ीद की बैअत ही असली फ़ैक्टर था? या कूफ़े वाला फ़ैक्टर असली था? या समाज के अंदर जो बुराईयाँ फैल गई थीं उन पर उंगली उठाने वाला फ़ैक्टर असली था? इन तीनों में से कौन सी चीज़ आशूरा के दिन करबला में होने वाली जंग की वजह बनी थी? किस चीज़ को समाने रखकर हम आशूरा को समझने की कोशिश करें?

दूसरी बात यह है कि इमाम हुसैन[अ०] के ज़माने में यानी यज़ीद की हुकूमत वाले ज़माने और पिछले पचास-साठ सालों में क्या फ़र्क़ आ गया था? ख़ास बात यह है कि अमीरे शाम मुआविया से तो इमाम हसन[अ०] ने सुलोह भी कर ली थी मगर इमाम हुसैन[अ०] किसी भी तरह अमीरे शाम के बेटे यज़ीद से सुलोह करने या उसकी बैअत करने पर तैयार नहीं थे और न ही यज़ीद के साथ किसी भी तरह की बातचीत करने को ठीक समझते थे।

सही बात यह है कि आशूरा के पीछे यह तीनों ही फ़ैक्टर्स मौजूद हैं यानी इमाम हुसैन[अ०] ने इन सारे फ़ैक्टर्स पर अपना रिएक्शन दिखाया था। करबला व आशूरा के पीछे इमाम हुसैन[अ०] ने कुछ फ़ैसले यज़ीद की बैअत को ठुकराने की वजह से लिए थे, कुछ फ़ैसले कूफ़े वालों के बुलावे की वजह से और कुछ फ़ैसले उस वक़्त के मुस्लिम समाज में आए हुए बिगाड़ को ध्यान में रखकर लिए थे। यह तीनों फ़ैक्टर इमाम के सामने थे

और इन तीनों को ध्यान में रखकर ही इमाम हुसैन[अ०] ने अपनी क्रांति आगे बढ़ाई थी।

बैअत वाला फ़ैक्टर

अब हम सब से पहले बैअत वाले फ़ैक्टर के बारे में बात करेंगे और देखेंगे कि हुसैनी क्रांति में इस फ़ैक्टर का रोल कितना बड़ा है। साथ ही यह भी देखेंगे कि इमाम हुसैन[अ०] ने इस फ़ैक्टर के मुक़ाबले में अपना क्या रिएक्शन दिखाया था और इस फ़ैक्टर के सामने आने की वजह से इमाम हुसैन[अ०] की इस्लामी ड्युटी क्या बनती थी।

यज़ीद की बैअत करने में दो बुराईयाँ थीं

1– राज–वंश का साथ

हम सभी जानते हैं कि किन हालात में अमीरे शाम मुआविया के हाथ में इस्लामी हुकूमत आई थी। इमाम हसन[अ०] के साथियों ने जंग करने में इतनी सुस्ती दिखाई थी कि इमाम को अमीरे शाम के साथ एक वक़्ती एग्रीमेंट करना पड़ा था लेकिन यह एग्रीमेंट अमीरे शाम की हुकूमत व ख़िलाफ़त की बुनियाद पर नहीं था बल्कि इस बुनियाद पर था कि अमीरे शाम के हाथों में हुकूमत बस कुछ ही दिनों के लिए रहेगी। उसके बाद मुसलमान जैसा फ़ैसला चाहेंगे अपने लिए कर लेंगे यानी अमीरे शाम के बजाए जिसको चाहेंगे अपना लीडर चुन लेंगे और हुकूमत उसके हाथ में दे देंगे। जिसके बारे में भी उन्हें यक़ीन हो जाएगा कि वह अल्लाह के रसूल का जानशीन है वह उसी को अपना ख़लीफ़ा मान लेंगे।

अमीरे शाम के पीरियड तक इस्लामी हुकूमत व ख़िलाफ़त बाप-बेटों का मामला नहीं था कि बाप गया तो उसका बेटा गद्दी पर बैठ गया बल्कि उस वक़्त तक यह एक ऐसा मामला था जिसके बारे में दो तरह की सोच पाई जाती थीः एक सोच यह थी कि इस्लामी हुकूमत व ख़िलाफ़त सिर्फ़ उसके हाथ में हो सकती है जिसे अल्लाह के हुक्म से रसूले इस्लाम[स०] ने ख़लीफ़ा बनाया हो। दूसरी सोच यह थी कि अल्लाह के बजाए ख़ुद लोग ही अपना ख़लीफ़ा चुन सकते हैं।

बहरहाल अभी तक लोगों के दिमाग़ों में यह बात नहीं बैठी थी कि लोगों के बजाए पिछला ख़लीफ़ा ही अगले ख़लीफ़ा को तय करके जाएगा और जब वह जाएगा तो वह भी अपने बाद के लिए किसी को ख़लीफ़ा बनाकर जाएगा। अभी तक लोग यह नहीं मानते थे कि अल्लाह के रसूल[स०] के हुक्म को भुलाकर ख़लीफ़ा अपने बाद के लिए किसी को अपना जानशीन बनाकर जाएगा या ख़लीफ़ा बनाने में मुसलमानों का कोई रोल नहीं रह जाएगा।

इमाम हसन[अ०] ने अमीरे शाम मुआविया के साथ किए गए एग्रीमेंट में जो एक ख़ास शर्त रखी थी वह यही थी कि अमीरे शाम मुआविया को अपने बाद के लिए किसी को ख़लीफ़ा बनाने का हक़ (अधिकार) नहीं है लेकिन अमीरे शाम ने उस एग्रीमेंट की दूसरी सारी शर्तों के साथ-साथ इस शर्त को भी सिरे से भुला दिया था और इतना ही नहीं बल्कि ख़ुद इमाम हसन[अ०] को भी ज़हर से शहीद करके अपने रास्ते से हटा दिया था ताकि अब इस बारे में कोई आवाज़ उठाने वाला ही न बचे। अमीरे शाम ने पहले दिन से ही यह तय कर रखा था कि ख़िलाफ़त अब इस घराने से बाहर नहीं जाएगी। इतिहासकारों ने लिखा है कि अमीरे शाम की पूरी

कोशिश यह थी कि इस्लामी हुकूमत व ख़िलाफ़त को सलतनत में बदल दिया जाए लेकिन अमीरे शाम को भी पता था कि अभी इस काम के लिए मैदान पूरी तरह से साफ़ नहीं है। अमीरे शाम के दिमाग़ में हर वक़्त बस यही बात घूमती रहती थी जिसके बारे में अपने ख़ास साथियों से बहुत बार बातचीत भी की थी लेकिन खुलकर ऐसा करने की हिम्मत किसी में भी नहीं थी क्योंकि इस बात का एहसास पूरी तरह से था कि यह काम इतना आसान नहीं है और अभी इसका सही वक़्त भी नहीं आया है।

इतिहासकारों ने लिखा है कि मुग़ीरा बिन शोबा अकेला एक ऐसा आदमी था जिसने अपने दम पर अमीरे शाम मुआविया बिन अबू सुफ़यान के दिमाग़ में यह बात अच्छी तरह से बिठा दी थी कि यह काम हो सकता है और ऐसा उसने कूफ़े का गवर्नर बनने की लालच में किया था। वह पहले भी कूफ़े का गवर्नर रह चुका था लेकिन अमीरे शाम ने उसे हटा दिया था जिसकी वजह से वह बड़ा दुखी था। मुग़ीरा बिन शोबा बड़ा चालाक, बड़ी-बड़ी चालें चलने वाला और बड़ा ख़तरनाक आदमी था क्योंकि उसकी खोपड़ी शैतानी खोपड़ी थी। फिर से कूफ़े का गवर्नर बनने के लिए उसने यह चाल चली थी कि वह शाम (सीरिया) गया और वहाँ पहुँचकर उसने यज़ीद से कहा कि मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि अमीरे शाम को किस चीज़ का इंतेज़ार है? वह तुम्हें हुकूमत देने में इतनी देर क्यों कर रहे हैं? आख़िर तुम्हें अपने बाद के लिए ख़लीफ़ा बनाने का एलान खुलकर क्यों नहीं कर रहे हैं? यज़ीद ने कहा कि उन्हें लगता है कि ऐसा कर पाना आसान नहीं है। मुग़ीरा ने कहा कि नहीं! ऐसा तो बड़ी आसानी से हो सकता है। तुम्हें किस बात का डर है? तुम्हें किस

शहर के लोगों के बारे में लगता है कि वह तुम्हें अपना ख़लीफ़ा मानने पर राज़ी नहीं होंगे? शाम वाले तो अमीरे शाम की हर बात को मानने पर राज़ी हो जाएंगे। शाम वालों की तरफ़ से घबराने की कोई ज़रूरत ही नहीं है लेकिन जहाँ तक मदीने की बात है तो अगर वहाँ ''उस आदमी'' को गवर्नर बनाकर भेज दिया जाए तो मदीना भी तुम्हारा हो जाएगा। हाँ! सब से ख़ास और सब से ख़तरनाक ईराक़ (कूफ़ा) है और उसके बारे में भी बिल्कुल मत घबराओ क्योंकि कूफ़ा शहर को मैं संभाल लूँगा।

इस बातचीत के बाद यज़ीद अपने बाप अमीरे शाम मुआविया के पास जाकर बोला कि मुग़ीरा ऐसा-ऐसा कह रहा है। पूरी बात सुनने के बाद अमीरे शाम ने मुग़ीरा को अपने पास बुलवाया। मुग़ीरा चालाक तो था ही और उसकी ज़बान भी बहुत लम्बी थी, इसलिए उसने आसानी से अमीरे शाम को पूरी बात समझाकर भरोसा दिला दिया कि मैदान बिल्कुल साफ़ है। अगर यज़ीद की ख़िलाफ़त का एलान कर दिया जाए तो सब मान लेंगे। जहाँ तक कूफ़े का मामला है तो वही सब से कठिन काम है और उसे मैं संभाल लूँगा। मुग़ीरा की बात सुनकर और समझकर अमीरे शाम ने उसे फिर से कूफ़े का गवर्नर बना दिया था और वह फ़ौरन ही कूफ़े चला गया था। वैसे यह सब इमाम हसन[अ०] की शहादत के बाद और अमीरे शाम की हुकूमत के आख़िरी दौर की बातें हैं।

मदीने और कूफ़े वाले यज़ीद को किसी भी तरह ख़लीफ़ा मानने पर तैयार नहीं हुए जिसकी वजह से मजबूर होकर ख़ुद अमीरे शाम मुआविया को मदीने जाना पड़ा। मदीने पहुँचकर वहाँ के बड़े लोगों यानी इमाम हुसैन[अ०], अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर और अब्दुल्लाह

बिन उमर वग़ैरा के साथ मीटिंग की और यह जताने की कोशिश की कि हालात कुछ ऐसे ही हैं कि ज़ाहिरी तौर पर हुकूमत अभी यज़ीद के ही हाथों में रहे और सारा काम आप लोग करें ताकि समाज टूटने से बचा रहे। इसलिए अभी दिखाने के लिए आप लोग यज़ीद की बैअत कर लीजिए और अंदर ही अंदर सारा काम-काज आप लोग ही करते रहिएगा। यह चाल चलकर अमीरे शाम मुआविया ने मदीने वालों को अपने बस में करने की भरपूर कोशिश की थी मगर यह चाल बेकार हो गई थी क्योंकि मदीने वालों ने इस बात को ठुकरा दिया था। इस तरह जैसा अमीरे शाम ने चाहा था वैसा नहीं हो सका। बाद में अमीरे शाम ने मस्जिद में लोगों के बीच एक दूसरी चाल चली और सब लोगों को यह समझाने की कोशिश की कि मदीने के बड़ों ने मेरी बात मान ली है, इसलिए अब तुम लोग भी मेरी बात मान लो मगर यह चाल भी कामयाब नहीं हो पाई।

अमीरे शाम मुआविया को अपने आख़िरी वक़्त में अपने बेटे यज़ीद की बड़ी फ़िक्र[1] थी और इसी लिए मरने से पहले यज़ीद को बहुत सारी बातें समझा दी थीं। अमीरे शाम ने एक-एक बात बहुत साफ़-साफ़ यज़ीद को समझाई थी कि अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर के साथ ऐसे मिलना, अब्दुल्लाह बिन उमर के साथ यह तरीक़ा अपनाना, हुसैन बिन अली[अ०] के साथ ऐसा करना... इमाम हुसैन[अ०] के बारे में यज़ीद को ख़ास तौर से समझाया था और कहा था कि उनके साथ नर्मी से रहना और मेल-जोल बनाकर रखना क्योंकि वह अल्लाह के रसूल[स०] के बेटे हैं जिसकी वजह से मुसलमानों के बीच उनकी जगह बहुत ऊँची है। हुसैन बिन अली[अ०] के साथ

---

[1] चिन्ता

जंग करने के बारे में भूले से भी मत सोचना। अमीरे शाम को ख़ूब अच्छी तरह से पता था कि अगर यज़ीद ने हुसैन बिन अली[अ०] के साथ जंग छेड़ दी और उनके ख़ून से अपने हाथ रंगीन कर लिए तो फिर हुकूमत उसके हाथ से भी चली जाएगी और अबू सुफ़यान के घराने से भी। अमीरे शाम का दिमाग़ बहुत तेज़ था। अमीरे शाम एक बड़े ही चालाक आदमी का नाम था। किसी भी दिग्गज राजनेता की तरह अमीरे शाम का कहा भी आमतौर पर सच ही साबित हुआ करता था यानी राजनीति के मैदान में अमीरे शाम की नज़र बड़ी गहरी थी जिसकी वजह से दूर तक सोचने और फ़ैसला करने की ताक़त भी बड़ी मज़बूत थी।

इसके बिल्कुल उलट यज़ीद एक तो जवान था, दूसरे वह एक ऐसा जवान था जो आज की बोली में राजकुमार था। दुनिया में आकर उसने राजमहल में आखें खोली थीं जहाँ हर तरह का आराम, सुकून और ऐश उसे हर वक़्त मिला हुआ था। दिन-दिन भर खेलना और मौज-मस्ती करना ही उसका काम था। भला राजनीति से उसे क्या मतलब ? उसके अंदर राजनीति की समझ थी ही नहीं। जवानी के मज़े और राजमहल की रंगीनियाँ उसके ख़ून में दौड़ रही थीं। यज़ीद ने वह काम किया जिसका सब से पहला नुक़सान ख़ुद अबू सुफ़यान के घराने को हुआ यानी इस पूरी घटना में सब से बड़ी हार इसी घराने की हुई थी। इस घराने को इस्लाम से कोई मतलब ही नहीं था। यह तो बस हुकूमत करना चाहता था और यज़ीद की कारस्तानियों से वह भी हाथ से चली गई। इमाम हुसैन[अ०] शहीद हो गए थे लेकिन उनका मिशन पूरा हो गया था जबकि अबू सुफ़यान के घराने वाले इतनी बुरी तरह से हारे कि चारों ख़ाने चित हो गए थे।

अमीरे शाम मुआविया की आँख सन् 60 हिजरी में रजब के महीने के बीच में बंद हुई थी जिसके फ़ौरन बाद यज़ीद ने मदीने के गवर्नर को एक लेटर लिखा था जिसमें अमीरे शाम की मौत की ख़बर दी गई थी और यह भी लिखा था कि मदीने वालों से मेरी बैअत ले लो। यज़ीद को पता था कि मदीना मुस्लिम जगत का सेंटर है और सब की नज़रें मदीने पर ही लगी हुई हैं। मदीने के गवर्नर के नाम लिखे उस लेटर में बड़ी सख़्ती से यह आर्डर भी दिया गया था कि जितनी जल्दी हो सके हुसैन बिन अली[अ०] को अपने पास बुलाओ और उनसे भी मेरी बैअत ले लो। अगर वह बैअत न करें तो उनका सर काटकर मेरे पास भेज दो।

इस तरह इमाम हुसैन[अ०] के सामने एक मामला यज़ीद की बैअत न करने का भी था और यह मामला ऐसा था कि इसमें दो ऐसी बुराईयाँ थीं जो ख़ुद अमीरे शाम के दौर में भी नहीं थीं जिनमें से एक तो यह थी कि अगर इमाम हुसैन[अ०] यज़ीद की बैअत कर लेते तो राजवंश वाली सियासत पर मोहर लग जाती यानी मामला बस यज़ीद की बैअत करने का ही नहीं था बल्कि यज़ीद की बैअत से आगे बढ़कर राजवंश वाली सियासत पर मोहर लगाने का भी था।

2- ख़ुद यज़ीद भी एक बुराई था

दूसरी बुराई ख़ुद यज़ीद था जिसकी वजह से उसकी हुकूमत पिछली सारी हुकूमतों से अलग दिखाई पड़ रही थी। यज़ीद एक ऐसा आदमी था जो गुनाहों में डूबा हुआ और खुल्लम- खुल्ला बुराईयाँ फैलाने वाला था। राजनीति की समझ उसे छूकर भी नहीं गई थी। अमीरे शाम मुआविया और बनी अब्बास के बहुत सारे दूसरे ख़लीफ़ा

भी गुनाहों व बुराईयों में डूबे हुए थे लेकिन एक बात वह अच्छी तरह से जानते थे कि अगर हुकूमत करना है तो चाहे दिखावे की हद तक ही क्यों न हो, इस्लामी क़ानूनों पर चलना होगा। उन्हें पता था कि अगर इस्लाम नहीं रहेगा तो वह भी नहीं बचेंगे। उन सब को यह बात बड़ी अच्छी तरह से पता थी कि एशिया, अफ़्रीक़ा, युरोप और दुनिया की दूसरी जगहों पर रहने वाले करोड़ों मुसलमानों से बनी यह हुकूमत शाम या बग़दाद में बैठे हुए ख़लीफ़ा की बात सिर्फ़ उनके मुसलमान होने की वजह से मानती है, लोग इसलिए हुकूमत के साथ हैं क्योंकि वह समझते हैं कि हमारा ख़लीफ़ा इस्लाम व क़ुरआन को मानता है। कुछ भी हो लेकिन इतना तो तय था कि लोग ख़लीफ़ा को बस मुसलमान होने की वजह से ही अपना ख़लीफ़ा मानते थे। यह बात भी सब को पता थी कि जिस दिन भी लोगों को पता चल गया कि उनका ख़लीफ़ा इस्लाम की जड़ों को काट रहा है तो उसी दिन वह ख़लीफ़ा की जड़ें भी काट देंगे। अगर इस्लाम को हटाकर देखा जाए तो ऐसा कोई फ़ैक्टर दिखाई नहीं पड़ता जिसकी वजह से ख़ुरासान वाले, मदीने या मक्के वाले या अफ़्रीक़ा वाले शाम या बग़दाद में बैठे ख़लीफ़ा की हुकूमत को मानते। इसी लिए जो समझदार और राजनीति की समझ रखने वाले ख़लीफ़ा थे वह इस बात को अच्छी तरह से समझते थे और इस्लामी क़ानूनों को लागू कराने पर मजबूर भी थे लेकिन यज़ीद बिन मुआविया के पास इतनी सी समझ भी नहीं थी। यज़ीद बड़ा ही गिरा हुआ और नीच आदमी था। उसे इस्लाम और मुसलमानों को नीचा दिखाने में बड़ा मज़ा आता था। इस्लामी क़ानूनों को तोड़ने से उसे बड़ी ख़ुशी मिलती थी। इस्लामी इतिहास की किताबों से यह बात साबित है कि अमीरे शाम

मुआविया को भी शराब बहुत पसंद थी[1] लेकिन किसी भी किताब में यह लिखा हुआ नहीं मिलता कि अमीरे शाम ने कभी किसी प्रोग्राम में आम लोगों के बीच शराब पी हो या कभी नशे में किसी आम जगह पर आना-जाना किया हो जबकि यज़ीद खुल्लम- खुल्ला अपने दरबार में शराब पीता था और नशे में इतना चूर हो जाया करता था कि उल्टी-सीधी बातें भी करने लगता था। सारे इतिहासकारों ने लिखा है कि यज़ीद बंदरों और शिकारी कुत्तों से खेला करता था। उसने अपने एक बंदर का नाम अबाक़ीस रखा था जिससे वह बड़ी मोहब्बत किया करता था। यज़ीद की माँ किसी गाँव की रहने वाली थी और वह पला- बढ़ा भी वहीं था इसलिए उसका रहन-सहन व आदतें गाँव वालों जैसी ही हो गई थीं। यही वजह थी कि उसे कुत्तों और बंदरों के साथ वक़्त बिताने में बड़ा मज़ा आता था। इतना ही नहीं बल्कि वह अपने पालतू जानवरों को अपने दरबार में अपने पास अपनी राजगद्दी पर भी बिठाता था और दूसरे सारे दरबारी नीचे कुर्सियों पर बैठते थे।

मशहूर इतिहासकार मसऊदी ने अपनी किताब ‘‘मुरूजुज़्ज़हब’’ में लिखा हैः

> यज़ीद अपने बंदर को रेशम से बने बड़े मंहगे-मंहगे और अच्छे कपड़े पहनाया करता था। उसे अपने दरबारियों व फ़ौज के कमांडरों से भी ऊँची जगह पर अपने पास बिठाता था।

यही सारी बातें थीं जिनकी वजह से इमाम हुसैन[अ०] ने कहा था कि अगर मुसलमान यज़ीद जैसे आदमी के हाथों का खिलौना बन जाएं तो फिर इस्लाम का अल्लाह

---

[1] अल-ग़दीर, 10/179

ही मालिक है।[1] इमाम हुसैन[अ०] इन्हीं सारी वजहों से यज़ीद और दूसरों में फ़र्क़ को मानते थे। सच्ची बात यह है कि यज़ीद तो इस्लाम के ख़िलाफ़[2] एक चलता-फिरता प्रोपेगंडा था।

अब यज़ीद के नाम पर इमाम हुसैन[अ०] से बैअत मांगी जा रही थी जिसे इमाम ने झठ से ठुकरा दिया था और साफ़-साफ़ कह दिया था कि मैं यज़ीद जैसे आदमी की बैअत नहीं कर सकता लेकिन यज़ीद भी पीछे हटने वाला नहीं था। उसने भी मदीने के गवर्नर से कह दिया था कि अगर हुसैन[अ०] बैअत कर लें तो ठीक है वरना उनका सर काटकर मेरे पास भेज दो।

यज़ीद जानता था कि अगर हुसैन[अ०] ने मेरी बैअत नहीं की तो इसका मतलब यह निकलेगा कि इतनी बड़ी हस्ती मेरी बैअत को ठुकरा रही है और उस ज़माने में बैअत न करने का मतलब बस यही निकलता था कि मेरा इस हुकूमत से कोई लेना-देना नहीं है। मैं इस हुकूमत के कामों और पॉलिसी को नहीं मानता हूँ। इसीलिए यज़ीद किसी भी तरह इस बात को मानने पर तैयार नहीं हो रहा था कि हुसैन[अ०] बैअत न करें और पहले की ही तरह आराम से लोगों के बीच रहते रहें। यज़ीद जानता था कि हुसैन[अ०] का बैअत न करना उसकी हुकूमत के लिए एक बहुत बड़ा ख़तरा है और यह बात बिल्कुल सही भी थी। बैअत न करने का मतलब बस यही था कि इमाम हुसैन[अ०] यज़ीद की हुकूमत को नहीं मानते हैं बल्कि आगे बढ़कर उसकी हुकूमत को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए तैयार हैं और इस काम को अपने लिए वाजिब भी समझते हैं। इसी लिए बार-बार बैअत के करवाने के लिए ज़ोर लगाया जा रहा था लेकिन

---

[1] मक़तल अल-मुकर्रम

[2] विरूध

इमाम हुसैन[अ०] ने भी साफ़-साफ़ कह दिया था कि मैं किसी भी हाल में यज़ीद की बैअत नहीं कर सकता।

यहाँ पर सवाल यह है कि इस बैअत वाले फ़ैक्टर के मुक़ाबले में इमाम हुसैन[अ०] की इस्लामी ड्युटी क्या थी। सामने की बात है कि अगर इमाम हुसैन[अ०] से बैअत का सवाल हुआ था तो उनके सामने बस एक ही रास्ता था और वह यह था कि यज़ीद की बैअत न करें। इससे हटकर और कोई रास्ता था ही नहीं।

जब इमाम हुसैन[अ०] से पूछा गया कि क्या आप यज़ीद की बैअत करने के लिए तैयार हैं तो इमाम ने फ़ौरन जवाब दिया था कि नहीं! यह नहीं हो सकता। कहा गया कि अगर आप बैअत नहीं करेंगे तो आपको जान से मार दिया जाएगा। इमाम हुसैन[अ०] ने कहा था कि कोई बात नहीं। मैं मरने के लिए भी तैयार हूँ लेकिन यज़ीद की बैअत नहीं कर सकता। यहाँ इमाम हुसैन[अ०] का जवाब बस एक ''ना'' था।

मदीने का गर्वनर बनी उमय्या में से ही था। यूँ तो बनी उमय्या का हर आदमी बड़ा नीच और बुरा था लेकिन वह दूसरों के मुक़ाबले में कुछ ठीक था। जब शाम से यज़ीद का लेटर आया तो उसने इमाम हुसैन[अ०] को बुलाया। उस वक़्त इमाम मदीने की मस्जिद में बैठे हुए थे। अब्दुल्लाह इब्ने ज़ुबैर भी इमाम के पास ही बैठे हुए थे। आने वाले ने आकर कहा कि आप दोनों को गवर्नर ने बुलाया है क्योंकि वह आप लोगों से कुछ बात करना चाहते हैं। इमाम ने कहा कि ठीक है, तुम जाओ! हम बाद में आते हैं। अब्दुल्लाह इब्ने ज़ुबैरे ने इमाम हुसैन[अ०] से पूछा कि आपको क्या लगता है? गवर्नर ने हम लोगों को क्यों बुलाया है? इमाम हुसैन[अ०] ने कहा कि मुझे लगता है कि इनका फ़िरऔन मर गया है और हम से नए ख़लीफ़ा की बैअत करने के लिए कहा

जाएगा। अब्दुल्लाह इब्ने ज़ुबैर ने कहा कि आप सही कह रहे हैं। मुझे भी ऐसा ही लग रहा है। फिर पूछा कि अब आप क्या करेंगे? इमाम हुसैन[अ०] ने कहा कि जाऊँगा। फिर अब्दुल्लाह इब्ने ज़ुबैर से पूछा कि तुम क्या करोगे? उन्होंने कहा कि सोचूँगा।

अब्दुल्लाह इब्ने ज़ुबैर रातों-रात मक्के की तरफ़ निकल गए और वहीं किसी जगह छुप गए। इधर इमाम हुसैन[अ०] मदीने के गवर्नर के पास पहुँच गए। इमाम अपने साथ बनी हाशिम के कुछ जवानों को भी ले गए थे मगर उनसे कह दिया था कि तुम सब बाहर ही ठहरो। अगर मेरी आवाज़ ऊँची हो जाए तो फिर फ़ौरन अंदर घुसे चले आना लेकिन जब तक मेरी आवाज़ ऊँची न हो तब तक अंदर न आना। वहाँ मरवान बिन ह-कम भी पहले से मौजूद था। बनी उमय्या का यह नीच आदमी एक बड़े लम्बे वक़्त तक मदीने का गवर्नर रह चुका था। जैसे ही इमाम हुसैन[अ०] अंदर पहुँचे, उसने यज़ीद का खुला ख़त इमाम हुसैन[अ०] को सुना दिया। इमाम ने पूछा कि अब मुझ से क्या चाहते हो? गवर्नर की कैंची जैसी ज़बान चलने लगी। उसने कहा कि लोगों ने यज़ीद की बैअत कर ली है, अमीरे शाम की पसंद भी यही थी, इस्लाम की भलाई भी इसी में है... इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप भी बैअत कर लीजिए। इस्लाम की भलाई इसी में है। बस बैअत कर लीजिए, उसके बाद जैसा आप कहेंगे वैसा ही होगा। जो भी कमियाँ होंगी उन्हें आपके कहने से दूर कर दिया जाएगा। इमाम हुसैन[अ०] ने उससे पूछा कि तुम लोग मुझ से बैअत क्यों करवाना चाहते हो? ज़ाहिर है कि तुम यह काम अल्लाह के लिए नहीं बल्कि लोगों के लिए करवाना चाहते हो। तुम लोग यह काम मुझ से अपनी हुकूमत को शरई (दीनी) हुकूमत साबित करने के लिए नहीं करवाना

चाहते हो बल्कि यह काम मुझ से इसलिए करवाना चाहते हो ताकि जब मैं बैअत कर लूँ तो उसके बाद दूसरे लोगों से भी आसानी से यज़ीद की बैअत करवा सको। उसने कहा कि जी हाँ! ऐसा ही है। इमाम ने कहा कि जब ऐसी बात है तो यहाँ इस बंद कमरे में बैअत का क्या फ़ाएदा होगा? यहाँ तो हम बस तीन ही लोग हैं। अगर मैं यहाँ बैअत कर भी लूँ तो इससे तुम्हें कुछ नहीं मिलने वाला। गवर्नर ने कहा कि जी हाँ! आप ठीक कह रहे हैं। इसलिए यह काम फिर किसी और वक़्त पर छोड़ते हैं लेकिन मरवान ने कहा कि यह क्या कर रहे हो? अगर हुसैन[अ०] यहाँ से चले गए तो इसका मतलब यह निकलेगा कि हुसैन[अ०] ने बैअत नहीं की। अगर हुसैन[अ०] यहाँ से निकल गए तो फिर बैअत नहीं करेंगे। अभी के अभी यज़ीद के हुक्म को पूरा करो। इतना सुनना था कि इमाम हुसैन[अ०] ने मरवान का गरेबान पकड़ कर उसे उठा लिया और पूरी ताक़त से ज़मीन पर दे मारा। फिर कहा कि अपनी हद के अंदर रहो। इतना कहकर इमाम बाहर निकल गए और उसके बाद तीन दिन मदीने में ही रूके रहे। रात में अपने नाना की क़ब्र पर जाया करते थे और वहाँ दुआ किया करते थे कि ऐ अल्लाह! मुझे अपना वह रास्ता दिखा दे जो तुझे पसंद हो।

आख़िरी बार तीसरी रात को इमाम हुसैन[अ०] अपने नाना रसूले इस्लाम[स०] की क़ब्र पर गए। वहाँ दुआएं मांगी और ख़ूब रोए। रोते-रोते वहीं इमाम की आँख लग गई। ख़्वाब में अल्लाह के रसूल[स०] को देखा। असल में वह ख़्वाब नहीं था बल्कि अल्लाह की तरफ़ से एक हुक्म था। जिसके बाद अगले दिन इमाम हुसैन[अ०] ने मदीना छोड़ दिया और छुपते-छुपाते हुए नहीं बल्कि मदीने से मक्के जाने वाले आम रास्ते से मक्के की तरफ़

चल दिए। साथ चलने वाले कुछ लोगों ने राए भी दी कि ऐ रसूल के बेटे! अच्छा होगा कि आप इस रास्ते से न जाएं क्योंकि हो सकता है कि हुकूमत के आदमी रास्ता रोक लें, आगे न जाने दें और बात बढ़ जाए या हाथापाई की नौबत आ जाए। कोई भी बहादुर आदमी इस बात को नहीं मान सकता, इसलिए इमाम हुसैन[अ०] ने फ़ौरन कहा कि मैं कहीं से कहीं तक भी यह नहीं चाहता कि मुझे लोग भगोड़ा समझें। मैं हर हाल में इसी रास्ते से जाऊँगा। जो होगा देखा जाएगा।

बहरहाल इस बात में कोई शक ही नहीं है कि आशूरा की क्रांति में सब से पहला फ़ैक्टर यज़ीद की बैअत है। यह बात इतिहास की किताबों से पूरी तरह साबित है कि यज़ीद ने इमाम हुसैन[अ०] से अपनी बैअत मांगी थी। यज़ीद ने मदीने के गवर्नर के नाम अपने लेटर में यह लिखा थाः ''हुसैन[अ०] से पक्की बैअत ले लो और जब तक बैअत न करें उन्हें छोड़ना मत।''[1]

जितनी ताक़त से बैअत मांगी गई थी उससे कहीं ज़्यादा ताक़त से इमाम हुसैन[अ०] ने बैअत को ठुकरा दिया था। इमाम हुसैन[अ०] किसी भी तरह यज़ीद की बैअत करने पर तैयार नहीं थे। इमाम का बस एक जवाब था कि ''नहीं''। यहाँ तक कि करबला में भी उमरे साद इमाम हुसैन[अ०] के पास आया था और उसने वहाँ भी चाहा था कि किसी तरह इमाम हुसैन[अ०] को यज़ीद की बैअत के लिए तैयार कर ले लेकिन इमाम को बैअत करना ही नहीं थी। आशूरा के दिन जो बातें इमाम हुसैन[अ०] ने कही थीं अगर उन्हें सामने रखा जाए तो अपने आप साबित हो जाता है कि इमाम आख़िर तक

---

[1] मक़तल अल-मुक़र्रम/140

अपने स्टैन्ड पर उसी तरह डटे हुए थे जैसे पहले दिन थेः

> ख़ुदा की क़सम! मैं कभी भी अपना हाथ तुम्हारे नीच हाथ में नहीं दूँगा। मैं यज़ीद की बैअत कर ही नहीं सकता। अब जबकि मैं देख भी रहा हूँ कि मेरे घर वालों और साथियों का एक-एक करके ख़ून बहाया जा रहा है और मेरे घर की औरतों व बच्चों को बंदी बनाया जाएगा मगर इसके बाद भी मैं यज़ीद की बैअत नहीं कर सकता।[1]

यह फ़ैक्टर अमीरे शाम के आख़िरी दिनों में सामने आया था लेकिन अमीरे शाम के मरने और यज़ीद के हुकूमत संभालने के बाद इसमें बहुत तेज़ी आ गई थी।

कूफ़ियों का इमाम हुसैन[अ0] को बुलाना

आशूरा के पीछे दूसरा फ़ैक्टर वह हज़ारों लेटर थे जो कूफ़ियों ने इमाम हुसैन[अ0] को लिखे थे और उनमें इमाम से फ़ौरन कूफ़े आने के लिए कहा गया था। कुछ किताबों में इस बारे में लिखा हुआ है कि अमीरे शाम मुआविया की आँख सन् 60 हिजरी में बंद हो गई थी जिसके बाद कूफ़ियों ने इमाम हुसैन[अ0] को बहुत सारे लेटर लिखे थे और कहा था कि हम आपको अपना ख़लीफ़ा बनाना चाहते हैं। जब इतने सारे लेटर इमाम हुसैन[अ0] के पास पहुँचे तो इमाम कूफ़े की तरफ़ चल दिए लेकिन कूफ़ियों ने धोखा दे दिया और इमाम हुसैन[अ0] को शहीद कर दिया गया। जब आदमी इन किताबों को पढ़ता है तो उसे लगता है कि जैसे इमाम

---

[1] अल-इरशाद, शेख़ मुफ़ीद/235

हुसैन[अ०] बड़े आराम से मदीने में अपने घर में बैठे हुए थे। उन्हें किसी काम से कोई मतलब ही नहीं था। क्या हो रहा है और क्यों हो रहा है, इस बात से इमाम को कोई फ़र्क़ ही नहीं पड़ता था लेकिन जैसे ही इमाम हुसैन[अ०] के पास कूफ़ियों के लेटर आना शुरू हुए तो इमाम फ़ौरन मदीने से कूफ़े जाने के लिए निकल पड़े। जबकि ऐसा बिल्कुल नहीं है क्योंकि रजब के महीने के आख़िर में यज़ीद के हाथ में हुकूमत आई थी और जब इमाम हुसैन[अ०] से यज़ीद की बैअत का सवाल किया गया तो इमाम उसकी बैअत को ठुकराकर फ़ौरन मक्का चले गए थे। मक्का अल्लाह का घर है इसलिए इमाम के लिए वहाँ ज़्यादा अमन था। ख़ुद मुसलमानों के दिल में भी मक्के के लिए बड़ी इज़्ज़त थी और हुकूमत भी मक्के की इज़्ज़त करने पर मजबूर थी। मक्का सिर्फ़ अमन-शांति की जगह नहीं थी बल्कि वहाँ लोगों का आना-जाना भी बहुत था यानी मक्का मुसलमानों के एक जगह इकट्ठा होने का सेंटर था। अमीरे शाम को दुनिया से गए हुए अभी कुछ ही दिन बीते थे और शायद यह ख़बर अभी कूफ़े पहुँची भी नहीं थी।

रजब और शाबान के महीने अल्लाह के घर के उमरे के महीने हैं। इमाम हुसैन[अ०] यह बात अच्छी तरह से जानते थे कि इन दिनों में लोग दूर-दूर से मक्के आते हैं। इन दिनों में आसानी से उनके बीच अपनी बात रखी जा सकती है। इसके बाद हज का मौसम आने वाला था जो इस काम के लिए और भी अच्छा टाइम था। इमाम हुसैन[अ०] के मक्का पहुँचने के लगभग दो महीने के बाद कूफ़े वालों के लेटर आना शुरू हुए थे। जबकि इमाम हुसैन[अ०] लगभग दो महीने पहले ही यज़ीद की बैअत को ठुकरा चुके थे और इमाम का यही फ़ैसला उनके लिए पहले ही एक बहुत बड़ा ख़तरा बन गया

था। यह सब लोग भी जानते थे कि न ही यज़ीद पीछे हटेगा और न ही इमाम हुसैन[अ०] उसकी बैअत करने पर तैयार होंगे। इसलिए हुसैनी क्रांति या आशूरा के पीछे कूफ़े वाला फैक्टर असली फ़ैक्टर नहीं है बल्कि यह दूसरे दर्जे का फ़ैक्टर है। बहुत से बहुत इस फ़ैक्टर के बारे में हम इतना कह सकते हैं कि इस फ़ैक्टर का बस इतना फ़ाएदा था कि बाद में आने वाले लोगों और इतिहास लिखने वालों के हिसाब से यह इमाम हुसैन[अ०] के लिए एक अच्छा मौक़ा था।

उस ज़माने में कूफ़ा एक बहुत बड़ा स्टेट और इस्लामी फ़ौज का गढ़ था। उस वक़्त इस्लामी फ़ौज के दो सेंटर थेः एक शाम और दूसरा कूफ़ा। यह शहर दूसरे ख़लीफ़ा की हुकूमत में बसाया गया था। इस शहर में शुरू ही से फ़ौजी और सिपाही रहते आए थे और साथ ही इस शहर ने इस्लामी हुकूमत को फैलाने में एक बहुत बड़ा रोल भी निभाया था। अगर कूफ़े वाले अपने वादे को पूरा कर देते और पूरी तरह से इमाम हुसैन[अ०] का साथ दे देते तो जंग में शायद जीत इमाम हुसैन[अ०] की ही होती। उस वक़्त के कूफ़े को उस वक़्त के मक्का और मदीने से नहीं मिलाया जा सकता। उस वक़्त के ख़ुरासान से भी नहीं मिलाया जा सकता। कूफ़े का मुक़ाबला बस शाम से था। इस सब के बाद भी कूफ़े वाले फ़ैक्टर का असर बस इतना था कि इमाम हुसैन[अ०] मक्के से बाहर निकल जाएं और मक्के को अपना सेंटर न बनाएं[1], न ही इब्ने अब्बास की उस बात को मानें जिसमें उन्होंने कहा था कि आप यमन के पहाड़ी इलाक़ों में चले जाइए और न ही अपने नाना के मदीना शहर को अपना सेंटर बनाएं बल्कि कूफ़े चले जाएं। इस तरह

---

[1] वैसे ख़ुद मक्का शहर में भी ऐसी कई बातें थीं जिनकी वजह से मक्के को सेंटर नहीं बनाया जा सकता था।

हम कह सकते हैं कि अगर ध्यान से देखा जाए तो आशूरा और हुसैनी क्रांति के पीछे कूफ़े वाला फ़ैक्टर बस एक दूसरे दर्जे का फ़ैक्टर है, असली फ़ैक्टर कहीं से कहीं तक नहीं है। इस फ़ैक्टर का असर बस इतना सा था कि यह क्रांति मक्के या मदीने से शुरू न होकर ईराक़ से शुरू हो वरना इमाम हुसैन[अ०] तो यज़ीद की बैअत को ठुकरा कर और अपना मिशन लेकर दो महीने पहले ही मदीना छोड़कर मक्के में आ गए थे।

बहरहाल कूफ़ियों के हज़ारों-हज़ार लेटर मिलने के बाद इमाम हुसैन[अ०] ने मक्का छोड़ दिया और कूफ़े की तरफ़ चल दिए। अभी कूफ़े के बार्डर पर पहुँचे ही थे कि हुर बिन रियाही की फ़ौजी टुकड़ी से सामना हो गया। इमाम हुसैन[अ०] ने वहीं पर कूफ़ियों से कहा कि तुम ही लोगों ने मुझे बुलाया था। अब अगर तुम नहीं चाहते हो तो ठीक है, मैं वापस चला जाता हूँ। इमाम हुसैन[अ०] की इस बात का मतलब यह बिल्कुल नहीं था कि मैं वापस चला जाता हूँ और यज़ीद की बैअत कर लेता हूँ या अभी तक मैंने अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुनकर, समाज में फैली हुई बुराईयों और मुसलमानों की इस्लामी ड्युटी के बारे में जो कुछ कहा था उसे भूल जाता हूँ। न ही इमाम हुसैन[अ०] यह कह रहे थे कि अब मैं वापस जा रहा हूँ और यज़ीद की बैअत करके अपने घर के अंदर बैठ जाऊँगा बल्कि इमाम कह रहे थे कि मैं इस हुकूमत को बुराईयों का अड्डा समझता हूँ और इसके मुक़ाबले में मेरी भी एक इस्लामी ड्युटी बनती है जिसे में हर हाल में पूरा करूँगा। तुम कूफ़ियों ने मुझे बुलाया था कि ऐ हुसैन! हमारे यहाँ आ जाइए! हम पूरी तरह से आपके मिशन में आपका साथ देंगे। तुम ने यही तो कहा था कि अगर यज़ीद की बैअत नहीं करना है तो मत कीजिए लेकिन अम्र बिल

मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर वाले जिस इस्लामी क़ानून की बुनियाद पर आप अपना मिशन लेकर आगे बढ़े हैं हम उस मिशन में पूरी तरह से आपके साथ हैं। अब मैं आ गया हूँ और उन लोगों को ढूँढ रहा हूँ जिन्होंने मेरी मदद करने का वादा किया था लेकिन अब तुम कह रहे हो कि कूफ़े वाले अपने वादे को भूल गए हैं तो कोई बात नहीं, मैं वापस उसी जगह चला जाता हूँ जो हमारा असली सेंटर है। मैं यहाँ से हिजाज़ (मक्के या मदीने) चला जाऊँगा और फिर देखूँगा कि अल्लाह की मर्ज़ी क्या है। बहरहाल मैं किसी भी हाल में यज़ीद की बैअत नहीं कर सकता, चाहे बैअत न करने पर हम सब की जान ही क्यों न चली जाए।

इस तरह हम कह सकते हैं कि कूफ़े वाले फ़ैक्टर का बस इतना असर था कि इमाम हुसैन[अ०] मक्के से बाहर निकल जाएं और कूफ़े की तरफ़ बढ़ जाएं।

वैसे हम पूरे भरोसे से यह नहीं कह सकते कि अगर कूफ़े वालों के लेटर न आते तो इमाम हुसैन[अ०] मक्के या मदीने में ही ठहर जाते। ऐसा नहीं है क्योंकि इतिहास से यह बात साबित है कि यह जगहें किसी न किसी हिसाब से इमाम हुसैन[अ०] के मिशन के लिए ठीक थीं ही नहीं। जहाँ तक मक्के की बात है तो यह शहर भी अमन-शांति के हिसाब से उतना अच्छा नहीं था जितना कूफ़ा था क्योंकि करबला के इतिहास के बारे में लिखी गई किताबों से यह बात साबित है कि दुश्मन ने यह फ़ैसला कर लिया था कि अगर इमाम हुसैन[अ०] बैअत नहीं करते हैं तो उन्हें वहीं मक्के में हज के बीच में ही रास्ते से हटा दिया जाए। इमाम हुसैन[अ०] भी इस बात को समझ गए थे कि अगर मक्के में रूके तो हज के बीच में ही क़त्ल कर दिया जाएगा क्योंकि हज में हाजी एहराम बांधते हैं और किसी के पास भी किसी तरह का

कोई हथियार नहीं होता। दुश्मन हथियार लेकर आता और इमाम हुसैन[अ०] को आसानी से क़त्ल करके निकल जाता जिससे ख़ान-ए-काबा की भी तौहीन होती, हज और इस्लाम की भी तौहीन होती और यह नुक़सान भी होता कि अल्लाह के रसूल[स०] का बेटा हज के बीच में शहीद भी हो जाता और उसका ख़ून भी किसी काम न आता। फिर दुश्मन यह ख़बर उड़ा देता कि हुसैन[अ०] का किसी से कोई छोटा-मोटा झगड़ा था। उसने हुसैन[अ०] को मार दिया है और अब कहीं छुप गया है। अगर ऐसा हो जाता तो इमाम हुसैन[अ०] का ख़ून इस्लाम के किसी काम न आता। ख़ुद इमाम हुसैन[अ०] ने भी इस बात की तरफ़ इशारा किया था। जब इमाम अपने रास्ते पर आगे बढ़ रहे थे तो किसी ने पूछा था कि आप बाहर क्यों निकल आए? उस आदमी के कहने का मतलब यह था कि मदीना तो आपके लिए अच्छी जगह थी। वहीं अपने नाना की क़ब्र के पास ही रहते, वहाँ तो कोई भी आपसे कुछ न कहता या मक्के में ख़ान-ए-काबा के पास रह लेते और वहाँ भी कोई आपको कोई नुक़सान न पहुँचा पाता। इसके उलट आपने बाहर निकलकर अपने लिए एक बहुत बड़ा ख़तरा मोल ले लिया है। इमाम हुसैन[अ०] ने उससे कहा कि तुम ग़ल्ती कर रहे हो। अगर मैं किसी जानवर के बनाए हुए किसी बिल में भी घुस जाऊँ तो यह लोग मुझे वहाँ भी नहीं छोड़ेंगे। यह लोग हर हाल में मेरा ख़ून बहाएंगे। इन लोगों से मेरा झगड़ा कभी ख़त्म होने वाला नहीं है। यह लोग मुझ से एक ऐसा काम करवाना चाहते हैं जो मैं किसी भी हाल में नहीं कर सकता। उधर से जो काम मैं उनसे करने के लिए कह रहा हूँ वह भी उस पर तैयार नहीं है।

अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर

करबला और आशूरा के पीछे तीसरा फ़ैक्टर अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर वाला फ़ैक्टर है। यह वह फ़ैक्टर है जिसके बारे में ख़ुद इमाम हुसैन[अ०] ने ही हमें बताया है। इतिहास में मिलता है कि इमाम हुसैन[अ०] के भाई मोहम्मद बिन हनफ़िया उस वक़्त बीमार थे और उनके दोनों हाथ बेकार हो गए थे जिसकी वजह से वह जंग कर ही नहीं सकते थे और इसी लिए इमाम के साथ नहीं जा सके थे। इमाम हुसैन[अ०] ने मदीने से निकलते वक़्त उनके नाम अपनी वसिय्यत लिखकर उन्हें थमा दी थी जिसमें इस तरह से लिखा हुआ थाः

> यह वसिय्यत हुसैन बिन अली की तरफ़ से उनके भाई मोहम्मद बिन हनफ़िया के नाम है।

इस वसिय्यत में इमाम हुसैन[अ०] ने बड़ी ख़ास बातें लिखी थीं। सब से पहले इमाम ने अल्लाह की तौहीद और उसके भेजे हुए आख़िरी रसूल की रिसालत की गवाही दी थी क्योंकि इमाम जानते थे कि आगे चलकर कुछ लोग यह भी कहेंगे कि हुसैन[अ०] अपने नाना के दीन से फिर गए थे। इसके बाद इमाम हुसैन[अ०] ने लिखा था कि मैं अपनी यह क्रांति लेकर मदीने से क्यों निकल रहा हूँ। इमाम ने लिखा थाः

> मैं दुनिया की मोहब्बत या हुकूमत की लालच में मदीना नहीं छोड़ रहा हूँ और न ही मैं ज़ुल्म करने या बुराईयाँ फैलाने के लिए अपने घर से निकल रहा हूँ बल्कि मैं अपने नाना की उम्मत में आए हुए बिगाड़ को सुधारने के लिए खड़ा हुआ हूँ। मैं अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर करना चाहता हूँ (यानी लोगों को अच्छे

> कामों की तरफ़ लाना और उन्हें बुरे कामों से बचाना चाहता हूँ) और मैं अपने नाना और अपने बाबा अली इब्ने अबी तालिब[अ०] की सीरत (रास्ते) पर चलना चाहता हूँ।[1]

इस वसिय्यत में दूर-दूर तक कहीं भी कूफ़ियों के ख़तों या उनका साथ मिलने की कोई बात नहीं है। यहाँ तक कि इस वसिय्यत में इमाम हुसैन[अ०] ने बैअत वाले मामले की भी कोई बात नहीं छेड़ी है बल्कि इस वसिय्यत के रास्ते से इमाम हुसैन[अ०] दुनिया वालों को यह समझाना चाह रहे थे कि मामला बैअत करने या न करने का नहीं है बल्कि उससे भी बढ़कर दूसरी बात है। बुनियादी बात यह है कि यह लोग अगर मुझ से यज़ीद की बैअत न भी मांगें तब भी मैं चुपचाप बैठने वाला नहीं हूँ। आगे आने वाले वालों को यह बात पता चल जाना चाहिए कि हुसैन इब्ने अली[अ०] हुकूमत या दौलत का भूखा नहीं है, न ही वह किसी पर ज़ुल्म करने वाला या बुराईयाँ फैलाने वाला इन्सान है बल्कि वह तो एक समाज-सुधारक है। आशूरा के दिन इमाम हुसैन[अ०] ने यह भी कहा थाः

> इस नीच बाप के नीच बेटे ने मेरे सामने बस दो रास्ते छोड़े हैंः या ज़िल्लत (नीचता) या तलवार। नहीं! यह नहीं हो सकता क्योंकि ज़िल्लत हम से कौसों दूर है। अल्लाह, उसके रसूल और मोमिनों ने ज़िल्लत को हम से दूर रखा है।[2]

यही वह जज़्बा है जो पहले दिन से लेकर ढलते हुए आशूर के दिन तक इमाम हुसैन[अ०] के अंदर

---

[1] मक़तल अल-ख़्वारज़मी, 1/188
[2] तोहफ़ल उक़ूल/241

कूट-कूटकर भरा हुआ था। ख़ुद इमाम हुसैन[अ०] ने भी हमें यही बताया है कि यह जज़्बा और सोच मेरे ख़ून और मेरी जान का एक हिस्सा बन गई है। यह सोच, यह नज़रिया और यह जज़्बा इमाम हुसैन[अ०] से अलग हो ही नहीं सकता था। अपनी ज़िन्दगी के आख़िरी पलों में जब इमाम हुसैन[अ०] के बदन में हज़ारों तीर लग चुके थे और अपने आप से उठकर खड़े हो पाना और दुश्मन से जंग करना तो बहुत दूर इमाम के अंदर हिलने-डुलने की भी ताक़त नहीं थी तब भी हमें इमाम हुसैन[अ०] के अंदर वही पहला वाला जज़्बा दिखाई देता है। इमाम हुसैन[अ०] का आख़िरी वक़्त था और चेहरे से इज़्ज़त का नूर टपक रहा था। दुश्मन इमाम हुसैन[अ०] के सर को उनके बदन से अलग करना चाहते थे मगर इमाम की बहादुरी, इज़्ज़त, बुज़ुर्गी और महिमा का ऐसा सिक्का दिलों पर बैठा हुआ था कि किसी के अंदर भी आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं थी। कुछ तो यह भी कह रहे थे कि कहीं ऐसा न हो कि हुसैन[अ०] कोई चाल चल रहे हों कि जैसे ही कोई उनके पास पहुँचे अचानक उस पर हमला बोल दें और यह बात तय थी कि इमाम हुसैन[अ०] के हमले के सामने कोई भी नहीं टिक सकता था। जब दुश्मनों से कुछ भी नहीं हो सका तो फिर उन्होंने एक बड़ी भद्दी चाल चली और इमाम हुसैन[अ०] के ख़ेमों पर हमला बोल दिया ताकि पता चल जाए कि अभी हुसैन[अ०] के अंदर कितनी ताक़त बची हुई है। दुश्मन ख़ेमों की तरफ़ बढ़े ही थे कि किसी ने कहा कि ऐ हुसैन! अभी आप ज़िन्दा हैं? वह देखिए! आपके ख़ेमों पर हमला बोल दिया गया है। इमाम हुसैन[अ०] बड़ी मुश्किलों से अपने घुटनों के सहारे से उठे और अपने भाले पर टिक कर चीख़कर बोलेः ऐ अबू सुफ़यान वालों के हाथों बिके हुए लोगो! ऐ अबू सुफ़यान और उसकी औलाद को मानने वालो! अगर

तुम दीन को नहीं मानते हो और अगर अल्लाह व क़यामत पर तुम्हारा ईमान नहीं है तो क्या तुम्हारी इन्सानियत[1] भी मिट्टी में मिल गई है?

किसी ने कहा कि ऐ फ़ातिमा के बेटे! आप क्या कहना चाह रहे हैं? इमाम हुसैन[अ०] ने कहा कि तुम्हारा झगड़ा मुझ से है। लो! यह मेरा बदन तुम्हारे सामने है। इस पर जितनी चाहो तीरों, तलवारों और भालों की बारिश कर लो लेकिन यह नहीं हो सकता कि हुसैन[अ०] ज़िन्दा रहे और उसकी आँखों के सामने दुश्मन उसके ख़ेमों के पास भी पहुँच जाए।

---

[1] मानवता

(2)
असली फ़ैक्टर

सन् 61 हिजरी में इमाम हुसैन[अ०] की लाई हुई क्रांति के तीन बड़े फ़ैक्टर दिखाई देते हैं। इस बात को हम यूँ भी कह सकते हैं कि करबला में होने वाली इस ऐतिहासिक क्रांति का ढांचा तीन चीज़ों ने तैयार किया था।

इस क्रांति के पीछे एक फ़ैक्टर यह था कि अमीरे शाम मुआविया के इस दुनिया से जाने के फ़ौरन बाद यज़ीद बिन मुआविया ने मदीने के गवर्नर के पास अपना आर्डर भेज दिया था कि जैसे भी हो, हुसैन इब्ने अली[अ०] से मेरी बैअत ले लो। इमाम हुसैन[अ०] से बैअत मांगी गई तो इमाम ने साफ़ मना कर दिया। उधर से बार-बार इमाम से बैअत करने के लिए कहा गया और ख़ूब दबाव बनाया गया मगर इधर इमाम हुसैन[अ०] ने भी बैअत न करने का पक्का फ़ैसला कर रखा था। न उधर से वह लोग पीछे हट रहे थे और न इधर से इमाम हुसैन[अ०] पीछे हटने पर तैयार थे। बस यहीं से झगड़ा शुरू हो जाता है।

दूसरा फ़ैक्टर यह था कि इमाम हुसैन[अ०] ने यज़ीद की बैअत को ठुकरा दिया था और मदीने को छोड़कर मक्के चले गए थे। इमाम हुसैन[अ०] को मक्के में रहते हुए लगभग दो महीने बीत चुके थे। इस बीच इस सारे मामले की कूफ़े वालों को भी ख़बर हो गई थी कि इमाम हुसैन[अ०] यज़ीद की बैअत को ठुकरा कर मक्के चले गए हैं और वहीं रूके हुए हैं। जैसे ही कूफ़े वालों को यह सब पता चला तो उन्हें होश आया और वह लोग लेटर पर लेटर भेजकर इमाम हुसैन[अ०] को कूफ़े बुलाने लगते हैं।

आमतौर पर यही कहा जाता है कि कूफ़े वालों के बुलाने पर ही इमाम हुसैन[अ०] अपने घर से निकले थे और उसके बाद ही इमाम ने अपना मिशन शुरू किया था। जबकि ऐसा बिल्कुल नहीं है बल्कि इसके उलट सही बात है कि इमाम हुसैन[अ०] की क्रांति की वजह से कूफ़े वालों ने इमाम को अपने यहाँ बुलाया था। जब कूफ़ियों को पता चला कि इमाम हुसैन[अ०] ने यज़ीद की बैअत को ठुकरा दिया है और मदीने को छोड़कर मक्के चले गए हैं तब जाकर कूफ़े वालों की आँख खुली थी। कूफ़े वाले भी इसलिए जागे थे क्योंकि दूसरे शहरों के मुक़ाबले में कूफ़ा इस काम के लिए अच्छी तरह से तैयार था। बहरहाल जब कूफ़े वालों को इमाम हुसैन[अ०] के बारे में पता चला तो वह सब एक साथ मिल बैठे और इमाम हुसैन[अ०] का साथ देने के लिए तैयार हो गए।

तीसरा फ़ैक्टर अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर है। यह वह फ़ैक्टर है जिसे ख़ुद इमाम हुसैन[अ०] ने बार-बार और बहुत खुल कर बताया है। इतना ही नहीं बल्कि इमाम हुसैन[अ०] ने जब भी अपने मिशन की बात की है तो कभी भी यज़ीद की बैअत या कूफ़े वालों के बुलावे की तरफ़ इशारा नहीं किया है बल्कि हर जगह

अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर को ही बार-बार और पूरी तरह से खोल कर बताया है जिसका सीधा सा मतलब यही बनता है कि इमाम हुसैन[अ०] का असली मिशन इस्लामी समाज में अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर को पूरी तरह से लागू करना था और यही उनकी क्रांति का असली फ़ैक्टर भी था।

कूफ़ियों का बुलावा

यह तीनों फ़ैक्टर अपनी वेल्यु के हिसाब से आपस में बराबर नहीं हैं। इमाम हुसैन[अ०] के मिशन में इन में से हर फ़ैक्टर ने अपनी-अपनी ताक़त भर रोल निभाया है।

सब से पहले हम कूफ़ियों के इमाम हुसैन[अ०] को कूफ़ा बुलाने पर बात करते हैं। जहाँ तक इस फ़ैक्टर की बात है तो यह फ़ैक्टर बहुत निचली सतह का है। वैसे इमाम हुसैन[अ०] के मिशन को समाने रखते हुए हम यह बात कह रहे हैं कि यह फ़ैक्टर निचली सतह का था वरना अगर हम ख़ुद अपने कामों को ध्यान में रखते हुए सोचें तो यह फ़ैक्टर भी कोई छोटा-मोटा फ़ैक्टर नहीं है। इस फ़ैक्टर को निचली सतह का इसलिए कहा जा सकता है क्योंकि इस फ़ैक्टर की वजह से बस इतना हुआ था कि एक ऐसे शहर वालों ने इमाम हुसैन[अ०] का साथ देने का एलान कर दिया था जिनके पास ताक़त थी। इस फ़ैक्टर की वजह से जंग होने पर बहुत से बहुत 50% जीत की उम्मीद थी। इससे ज़्यादा किसी को भी जीत की उम्मीद नहीं थी। अगर हम यह मान भी लें कि कूफ़े के सब लोग इमाम हुसैन[अ०] का साथ देने पर तैयार हो गए थे, वह सब के सब अपने वादे पर खरे भी उतरते और उन में से कोई भी धोखा न देता तब भी ऐसा एक भी आदमी नहीं था जो यह कह रहा हो

कि हर हाल में जीत तो इमाम हुसैन[अ०] की ही होना है क्योंकि कूफ़े में रहने वाले सारे लोग कूफ़ी नहीं थे। कूफ़े में बहुत सारे शाम वाले भी रहते थे जो अबू सुफ़यान के घराने को मानने वाले थे। अगर कूफ़े की आबादी से इन्हीं शामियों को कम कर दिया जाता तो अपने आप जीत की उम्मीद आधी रह जाती क्योंकि इमाम अली[अ०] की हुकूमत में इन्हीं शामियों ने जंगे सिफ़्फ़ीन में कूफ़ियों से जंग की थी और यह जंग 18 महीने तक खिंच गई थी जिसमें शामियों के बहुत सारे लोग मर गए थे मगर इसके बाद भी वह लोग डटे रहे थे। फिर भी जीत की 30% या 40% उम्मीद तो बहरहाल थी। कूफ़े वालों ने इमाम हुसैन[अ०] का साथ देने का एलान कर दिया था और उधर से इमाम भी कूफ़े की तरफ़ चल पड़े थे।

इस तरह से देखा जाए तो इस फ़ैक्टर की बस इतनी ही जगह बनती है। इससे बढ़कर यह फ़ैक्टर और किसी काम का नहीं था क्योंकि कोई भी हो, इन हालात में वह इमाम हुसैन[अ०] की तरह 'हाँ' में ही जवाब देता।

बैअत वाला फ़ैक्टर

कूफ़े वाले फ़ैक्टर से कहीं बड़ा बैअत वाला फ़ैक्टर है। साथ ही यह फ़ैक्टर बिल्कुल शुरू में ही सामने आ गया था। यह तब की बात है जब इमाम हुसैन[अ०] का मिशन शुरू ही हुआ था और किसी ने भी कहीं से भी साथ देने का एलान नहीं किया था।

यह वह दौर था जब इस्लामी जगत में मुसलमान एक ऐसी हुकूमत में रह रहे थे जो पिछले बीस सालों से लोगों पर हर तरह के ज़ुल्म ढाती आ रही थी और अब अपने बाप के मरने के बाद हुकूमत की गद्दी पर बैठा हुआ यज़ीद इमाम हुसैन[अ०] से बैअत मांग रहा था।

अमीरे शाम ने अपनी हुकूमत के दूसरे दस सालों में तो सारी हदें पार कर दी थीं और इस्लामी जगत का हाल यह बना दिया था कि मक्के-मदीने समेत हर जगह नमाज़े जुमा में मिम्बरों से हज़रत अली[अ०] को बुरा-भला कहा जा रहा था और इतना ही नहीं बल्कि यह काम इबादत समझकर किया जा रहा था। अगर कोई आदमी अपनी ज़बान खोलने की कोशिश भी करता था तो फ़ौरन उसका सर काट दिया जाता था। हालत यह हो गई थी कि अमीरे शाम की ज़िन्दगी के आख़िरी सालों में हज़रत अली[अ०] का नाम लेना भी जुर्म[1] था। यह सारी बातें हवा में नहीं हैं बल्कि यह सब हतिहास के पन्नों में लिखा हुआ है। अगर किसी को हज़रत अली[अ०] का नाम लेना होता था तो इशारों-इशारों में ही अपनी बात पूरी करता था। इतने बुरे हालात बना दिए गए थे कि अगर किसी हदीस में हज़रत अली[अ०] की कोई छोटी से छोटी अच्छाई या बड़ाई भी होती थी तो हदीसें लिखने वाले जब वह हदीस एक-दूसरे को सुनाया करते थे तो किसी अलग जगह पर जाकर, दरवाज़ों-खिड़कियों पर पड़े पर्दे खींचकर और दरवाजों को बंद करके सुनाया करते थे। फिर एक-दूसरे को क़सम भी खिलवाते थे कि किसी को यह न बताना कि मैंने यह हदीस तुम्हें सुनाई है और अगर किसी को यह हदीस सुनाना हो तो पहले पूरी तरह से ठोक-बजाकर देख लेना कि भरोसेमंद आदमी है कि नहीं।

इन भयानक हालात में इसी आदमी का बेटा यज़ीद मुसलमानों का ख़लीफ़ा बन बैठा था जो अभी जवान था, जिसके अंदर घमंड व अकड़ कूट-कूटकर भरी हुई थी, जो अपने बाप से भी बड़ा ज़ालिम था और राजनीति के

---

[1] अपराध

मैदान में बिल्कुल नौसिखया था जिसे ज़रा सी भी डिप्लोमेसी नहीं आती थी। अगर ऐसा आदमी किसी से बैअत मांगे और सामने वाले बैअत करने से मना कर दे तो यह कोई छोटा-मोटा काम नहीं है। यज़ीद का आर्डर था कि फ़ौरन बैअत ले लो मगर उधर से इमाम हुसैन[अ०] का भी साफ़-साफ़ जवाब था कि चाहे मेरे बदन के टुकड़े-टुकड़े कर डालो लेकिन मैं बैअत नहीं करूंगा।

यह वह जगह है जहाँ इमाम हुसैन[अ०] उस वक़्त की सब से बड़ी अत्याचारी व ज़ालिम हुकूमत के सामने अकेले अपने दम पर खड़े हुए थे। अभी न किसी ने इमाम हुसैन[अ०] का साथ देने का एलान किया था, न इमाम के पास साथी थे और न ही किसी को ज़रा सी भी यह उम्मीद थी कि हुसैन[अ०] अपने मिशन में कामयाब भी हो पाएंगे। इमाम हुसैन[अ०] एक ऐसा काम कर रहे थे कि आने वाला इतिहास यह न लिख दे कि हुसैन[अ०] ने अपना दीन बेच दिया या ज़ालिम हुकूमत के हाथों बिक गए। जो लोग ज़ोर- ज़बरदस्ती से बैअत ले लेते हैं वही बाद में पैसे के बल पर इतिहास को भी बदल देते हैं और यह काम इतिहास में हुआ भी है। अमीरे शाम ने लोगों को ख़रीदने और उस वक़्त के उलमा को अपनी उंगलियों पर नचाने के लिए इस्लामी हुकूमत के सरकारी ख़ज़ाने का मुँह खोल दिया था। हदीसें लिखने वालों को पैसे के बल पर ख़रीद कर हदीसें बदलवा दी थीं, अल्लाह के रसूल[स०] की हदीसों में आए नामों को निकाल कर अपनी पसंद के नाम लिखवा दिए थे। इतना ही नहीं बल्कि हज़रत अली[अ०] के दुश्मनों की तारीफ़ में हदीसें तक गढ़वा दी थी। इतिहासकारों ने लिखा है कि समरा बिन जुन्दब ने आठ हज़ार सोने के सिक्के लेकर हज़रत अली[अ०] की बुराई में हदीस घढ़ दी थी। इसलिए इतिहास को बदल देना उन लोगों के लिए कोई बड़ा

काम नहीं था। अगर बाद में थोड़ा- बहुत सही इतिहास बच भी पाया है तो यह भी हुसैनी क्रांति की बदौलत ही हुआ है। अगर इमाम हुसैन[अ०] चुप होकर एक कोने में बैठ गए होते तो पूरा इतिहास बदल दिया गया होता।

इसलिए हम यह कह सकते हैं कि यह बैअत वाला फ़ैक्टर कूफ़े वाले फ़ैक्टर से थोड़ा बड़ा है और इस फ़ैक्टर ने हुसैनी क्रांति को काफ़ी ताक़त दी है।

अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर

हुसैनी क्रांति के पीछे तीसरा फ़ैक्टर अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर (अच्छाईयों की तरफ़ बुलाना और बुराईयों से रोकना) है। यही वह फ़ैक्टर है जिस पर इमाम हुसैन[अ०] ने पूरी तरह से भरोसा किया है। यहाँ इमाम हुसैन[अ०] ने अल्लाह के रसूल[स०] की हदीसें और अपना मिशन दुनिया वालों के सामने रखा है। मदीने से मक्के के लिए निकलने के बाद इमाम हुसैन[अ०] ने बार-बार अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के बारे में बात की थी और वह भी बैअत या कूफ़े वालों के बुलावे का नाम लिए बिना। हुसैनी क्रांति की जितनी वेल्यु अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर ने बढ़ाई है उतनी पिछले दोनों फैक्ट़र नहीं बढ़ा सके थे। यही वह फ़ैक्टर है जिसकी वजह से करबला आज तक हमारे बीच जगमगा रही है और आज भी दुनिया वालों को रास्ता दिखा रही है। यूँ तो आशूरा के पीछे दिखाई देने वाले सारे ही फ़ैक्टर सीखने-सिखाने के लिए काफ़ी हैं लेकिन इस फ़ैक्टर में बड़ी जान है क्योंकि यह वह फ़ैक्टर है जो न कूफ़ियों के साथ देने के एलान की बैसाखी पर टिका हुआ है और न बैअत की कुर्सी पर। इस बात को हम यूँ भी कह सकते हैं कि अगर कूफ़े

वाले इमाम हुसैन[अ०] का साथ देने का एलान न भी करते तब भी इमाम इस इस्लामी क़ानून ''अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर'' पर चलते हुए यज़ीद की हुकूमत का तख़्ता पलटने के लिए निकल खड़े होते। अगर इमाम हुसैन[अ०] से यज़ीद अपनी बैअत न भी मांगता तब भी इमाम चुपचाप न बैठे रहते। बस यहीं से बात पूरी तरह से बदल जाती है और यहीं से एक बहुत बड़ा फ़र्क़ पैदा हो जाता है।

अगर हम पहले वाले फ़ैक्टर को सामने रखें तो हम देखते हैं कि कूफ़े वालों ने इमाम हुसैन[अ०] का साथ देने का एलान कर दिया था और 50% या उससे कम जीत की उम्मीद तो बहरहाल थी ही। इसलिए इमाम हुसैन[अ०] अपना मिशन लेकर उठ खड़े हुए थे। यानी अगर हम सिर्फ़ इसी एक फ़ैक्टर को ध्यान में रखकर देखें तो कहा सकता है कि अगर कूफ़ियों ने इमाम हुसैन[अ०] का साथ देने का एलान न किया होता तो इमाम अपनी जगह से भी न हिलते। दूसरे वाले फ़ैक्टर को ध्यान में रखकर देखें तो भी हम कह सकते हैं कि यज़ीद ने इमाम हुसैन[अ०] से बैअत मांगी थी और इमाम ने साफ़-साफ़ बैअत करने से मना कर दिया था। अगर हुकूमत इमाम हुसैन[अ०] से बैअत न मांगती तो मामला कुछ और ही होता। इमाम हुसैन[अ०] कह देते कि तुम्हें बैअत चाहिए मगर मैं बैअत नहीं कर सकता, इसलिए तुम्हारा रास्ता अलग है और मेरा रास्ता अलग। तुम अपने काम से काम रखो और मैं अपने काम से काम रखता हूँ। बात वहीं ख़त्म हो जाती। इसका मतलब यह हुआ कि अगर हम सिर्फ़ बैअत वाले फ़ैक्टर को ध्यान में रखें तो कह सकते हैं कि अगर हुकूमत इमाम हुसैन[अ०] से बैअत न मांगती तो इमाम भी आराम से

अपने घर में बैठे रहते। फिर न करबला हमारे सामने होती और न आशूरा।

लेकिन सिर्फ़ तीसरा फ़ैक्टर यानी अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर ही एक ऐसा फ़ैक्टर है जिसमें इमाम हुसैन[अ०] हुकूमत पर हमला करते हुए दिखाई देते हैं, एक क्रांतिकारी इन्सान नज़र आते हैं और हुकूमत के गरेबान पर हाथ डालते हुए दिखाई देते हैं। इस फ़ैक्टर के बाद अब इमाम हुसैन[अ०] को हुकूमत के ख़िलाफ़ उठ खड़े होने के लिए दूसरी किसी भी चीज़ की ज़रूरत नहीं थीं क्योंकि मुस्लिम समाज में हर जगह बुराईयाँ फैल चुकी थीं, अल्लाह के हराम को हलाल और हलाल को हराम बना दिया गया था और हुकूमत का सरकारी ख़ज़ाना ग़लत लोगों के हाथों में पड़ गया था जिसका बहुत बुरा इस्तेमाल हो रहा था जबकि अल्लाह के रसूल[स०] बहुत पहले ही कह गए थेः

> जो कोई भी इन हालात को देखे और अपने हाथ व ज़बान से कुछ भी न करे तो यह अल्लाह का हक़ है कि वह ऐसे आदमी को भी वहीं ले जाए जहाँ उन ज़ालिमों (अत्याचारियों) को ले जाएगा जिन्होंने यह हालात बना दिए हैं।

यानी अल्लाह क़यामत में इन ज़ालिमों और इन ज़ालिमों के ज़ुल्म पर चुपचाप बैठे रहने वालों को एक ही जगह रखेगा। इमाम हुसैन[अ०] अपने नाना की हदीस मुसलमानों को सुना रहे थे कि जब दीन को बदला जा रहा हो और आदमी देखने- समझने के बाद भी चुपचाप बैठा रहे तो उसका हाल भी वही होगा जो दीन को बदलने वाले का होगा।

इस बारे में अल्लाह के रसूल[स०] की बस यही एक हदीस नहीं है बल्कि और भी हदीसें हैं।

इमाम अली रज़ा[अ०] ने भी अल्लाह के रसूल[स०] की एक हदीस सुनाई है जो इस तरह से हैः

जब भी लोग अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर को एक-दूसरे के सर डालने लगें (यानी हर आदमी यह सोचने लगे कि मैं ही यह काम क्यों करूँ? कोई दूसरा आदमी लोगों से अच्छे काम करने के लिए कहे या बुरे कामें से रोके) तो उन्हें अल्लाह के अज़ाब[1] के लिए तैयार हो जाना चाहिए।[2]

कौन सा अज़ाब आएगा? क्या आसमान से पत्थर बरसेंगे? नहीं! क़ुरआन ने इस अज़ाब के बारे में पहले ही बता दिया हैः

कह दीजिए कि अल्लाह के पास इतनी क़ुदरत (ताक़त) है कि वह तुम्हारे ऊपर से या पैरों के नीचे से अज़ाब भेज दे या एक धड़े को दूसरे से टकरा दे और एक के हाथ दूसरे को अज़ाब का मज़ा चखा दे। देखो! हम किस तरह अपनी निशानियाँ पलट- पलटकर दिखाते है कि शायद उनकी समझ में आ जाए।[3]

अल्लाह के रसूल[स०] की एक और हदीस है जिसे शिया-सुन्नी दोनों उलमा ने लिखा हैः

> एक दूसरे को अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करो यानी अच्छाईयों की तरफ़ बुलाओ और बुराईयों से रोको। अगर तुम ने यह काम करना बंद कर दिया तो बुरे लोग तुम्हारे ऊपर सवार हो जाएंगे। फिर जब अच्छे लोग अच्छे कामों के लिए बुलाएंगे तो कोई उन्हें जवाब देने वाला भी नहीं मिलेगा।[4]

---

[1] प्रकोप

[2] फ़रूए काफ़ी, 2/59

[3] सूरए अन्आम/65

[4] फ़रूए काफ़ी, 4/56

बहुत से लोगों ने इस हदीस का यह मतलब भी निकाला है कि जब बुरे लोगों का समाज पर कंट्रोल हो जाएगा तो अच्छे लोग अल्लाह के सामने गिड़गिड़ा-गिड़गिड़ा कर दुआएं मांगेगे मगर अल्लाह उनकी दुआएं पूरी नहीं करेगा यानी जिस समाज में लोग एक-दूसरे को अच्छाईयों का शौक़ नहीं दिलाते और बुरे कामों से नहीं रोकते उस समाज से अल्लाह की रहमत दूर हो जाती है। फिर लोग जितनी भी दुआएं मांगे अल्लाह इस गुनाह की वजह से उनकी दुआओं को नहीं सुनता है।

लेकिन मशहूर आलिम ग़ज़्ज़ाली ने इसका एक बड़ा ही अच्छा मतलब बताते हुए लिखा हैः

इसका यह मतलब यह नहीं है कि लोग अल्लाह से दुआएं मांगेगे और उनकी दुआएं पूरी नहीं होंगी बल्कि इसका मतलब यह है कि जब लोग दूसरों को अच्छे कामों का शौक़ नहीं दिलाएंगे और बुरे कामों से नहीं रोकेंगे तो इतना नीचे गिर जाएंगे और इतनी उनकी इज़्ज़त कम हो जाएगी कि फिर जब उन्हीं बुरे लोगों के सामने अपनी बात रखेंगे तो वहाँ कोई भी उनकी बात की तरफ़ ध्यान देने वाला नहीं मिलेगा यानी अल्लाह के रसूल[स०] यह कहना चाह रहे थे कि अगर तुम इज़्ज़त वाले बनना चाहते हो और चाहते हो कि दूसरे तुम्हारी बात को ध्यान से सुनें तो अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करना मत छोड़ना। अगर तुम ने अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर को छोड़ दिया तो इसका सब से पहला नुक़सान यह होगा कि तुम कमज़ोर हो जाओगे, तुम्हारी इज़्ज़त में कमी आ जाएगी और दुश्मन खुलकर तुम्हारे सामने आकर तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर देंगे।

फिर तुम नौकरों की तरह ख़ूब हाथ-पैर जोड़ेगे मगर कोई भी तुम्हारी बात सुनने वाला नहीं होगा। ग़ज़्ज़ाली ने सच में बहुत अच्छा मतलब निकाला है। यही इस्लामी क़ानून है और इमाम हुसैन[अ०] ने इसी कानून पर भरोसा किया था। इमाम हुसैन[अ०] ने यह बात साफ़ कर दी थी कि अगर कूफ़े वाले मुझे न भी बुलाते या अगर यज़ीद मुझ से बैअत न भी मांगता तब भी मैं अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर की वजह से चुप न बैठता।

कुरआन में अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर

आइए! ज़रा और गहराई में जाकर इस बारे में बात करते हैं। इस क़ानून को ठीक से समझना बहुत ज़रूरी है। यह वह क़ानून है जिस पर ख़ुद अल्लाह के रसूल[अ०] ने भी बहुत भरोसा किया था। अगर हम हदीसों को सामने न भी रखें और बस क़ुरआन पर ध्यान दें तब भी आसानी से यह बात समझ में आ जाती है कि ख़ुद क़ुरआन ने भी हमें यह इस्लामी क़ानून बार-बार याद दिलाया है। जबकि इस बारे में अल्लाह के रसूल[स०] और दूसरे मासूम इमामों की हदीसें तो बहुत ज़्यादा हैं। इतना ही नहीं बल्कि इस्लाम के शुरू से ही इस्लामी फ़िक़्ह (Jurisprudence) पर जितनी भी किताबें लिखी गई हैं उन सब में एक चैप्टर ''अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर'' के ऊपर ज़रूर होता है।

बहरहाल क़ुरआन ने बार-बार यही बात दोहराई है कि पिछली न जाने कितनी क़ौमें और समाज बस इसी वजह से टूट-फूट कर ख़त्म हो गए थे क्योंकि उन्होंने

इस इस्लामी क़ानून को भुला दिया था। नीचे लिखी यह आयत यही बात कह रही हैः

> पिछली नस्लों में ऐसे समझदार लोग क्यों नहीं हुए जो लोगों को ज़मीन पर बुराईयाँ फैलाने से रोकते ?[1]

एक दूसरी आयत में अल्लाह फ़रमाता हैः

> वह लोग जो बुरे काम करते थे उन कामों से एक-दूसरे को रोकते नहीं थे। वह लोग कितना बुरा काम करते थे![2]

एक आयत में क़ुरआन मुसलमानों से कह रहा हैः

> तुम लोगों में कुछ ऐसे भी होना चाहिएं जो लोगों को अच्छे कामों की तरफ़ बुलाएं, अच्छाईयों का हुक्म दें और बुराईयों से रोकें और यही लोग कामयाब हैं।[3]

इस आयत दूसरा मतलब यह भी निकल सकता है कि तुम एक ऐसी उम्मत (क़ौम) बन जाओ जिसमें सब एक-दूसरे को अच्छाईयों का हुक्म दे रहे हों और बुराईयों से रोक रहे हों। दोनों मतलब सही हैं और आपस में इन दोनों में कोई टकराव नहीं है क्योंकि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर एक ऐसा क़ानून है जो सब पर लागू होता है यानी एक हिसाब से यह समाज के सब लोगों की इस्लामी ड्युटी है और एक हिसाब से यह समाज में ऊपर उठ चुके लोगों की ख़ास ड्युटी है।

---

[1] सूरए हूद/116

[2] सूरए माएदा/79

[3] सूरए आले इमरान/104

बहरहाल इस आयत का कोई सा भी मतलब लिया जाए, क़ुरआन कह रहा है कि तुम्हें एक ऐसा समाज बनाना है जिसमें हर आदमी इस इस्लामी क़ानून पर चल रहा हो और अगर ऐसा हो गया तो कामयाबी तुम्हारे क़दम चूमेगी। अगर कामयाब होना चाहते हो तो बस यही एक रास्ता है।

सूरए आले इमरान में अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर से जुड़ी बहुत सारी आयतें हैं। इसी सूरे में ऊपर वाली आयत से पहले यह आयत हैः

> सब मिलकर अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से थाम लो और आपस में गुट न बनाओ।[1]

इस आयत में क़ुरआन एकता और मिल-जुलकर रहने और लड़ने-झगड़ने या गुट बनाने से बचने की बात कर रहा है। यानी अगर तुम्हारे बीच कोई झगड़ा या किसी तरह की अनबन हो जाए तो उसे हल करने की कोशिश करो। जितना हो सके उतना झगड़े, मन-मिटाव या अन-बन को कम करो। ऐसा न हो कि तुम आपसी झगड़ों को ही बढ़ाने में लग जाओ। अगर तुम लोगों के बीच दूरियाँ बढ़ गईं तो इससे किसे फ़ाएदा होगा ? भला इस्लाम के दुश्मनों से हटकर और किसका फ़ाएदा होगा ? दुश्मन तो यह चाहता ही है कि तुम्हारे बीच जितना हो सके उतनी दूरियाँ बढ़ा दे। वह तो यह चाहता ही है कि तुम एक-दूसरे की जान के दुश्मन बन जाओ, एक-दूसरे को बुरा- भला कहो और एक-दूसरे की जड़ें काटो।

इतना कहने के बाद क़ुरआन कहता है कि तुम लोगों में कुछ ऐसे भी होना चाहिएं जो लोगों को अच्छे कामों की तरफ़ बुलाएं, अच्छाईयों का हुक्म दें और बुराईयों से रोकें और यही लोग कामयाब हैं। पिछली

---

[1] सूरए आले इमरान/103

वाली आयत में एकता की बात कहकर क़ुरआन इस आयत में खुलकर हुक्म दे रहा है कि तुम्हारे बीच ऐसे भी लोग होना चाहिएं जो तुम्हें एकता का पाठ पढ़ाएं और मुस्लिम समाज में सर उठाने वाले झगड़ों की जड़ें काटें।

यह सब कहने के बाद क़ुरआन आख़िर में यह हुक्म भी दे रहा हैः

> और ख़बरदार! उन लोगों की तरह न बन जाना जिन्होंने आपस में गुट बना लिए और एक-दूसरे से अलग हो गए।[1]

क्या यह अजीब सी बात नहीं है कि एकता और आपस में मिल-जुलकर रहने का हुक्म देने वाली दो आयतों के बीच में यह आयत आई हैः

> तुम लोगों में कुछ ऐसे भी होना चाहिएं जो लोगों को अच्छे कामों की तरफ़ बुलाएं, अच्छाईयों का हुक्म दें और बुराईयों से रोकें और यही लोग कामयाब हैं।

यह इस बात की निशानी है कि क़ुरआन सारी अच्छाईयों में ''मुसमलानों के बीच एकता और मिल-जुलकर रहने'' को सबसे ऊपर रखता है। इसी तरह सारी बुराईयों में ''लड़ने-झगड़ने और आपसी दूरियों'' को सब से बुरा काम समझता है। यह काम किसी भी नाम या किसी भी तरीक़े से हो, इस्लाम इसे बिल्कुल पसंद नहीं करता है।

एक दूसरी आयत में क़ुरआन एलान कर रहा हैः

---

[1] सूरए आले इमरान/105

> तुम सब से अच्छी उम्मत (क़ौम) हो जिसे लोगों के सामने लाया गया है। तुम लोग अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने वाले हो।[1]

यानी तुम सारी दुनिया में सब से अच्छे लोग हो और ऐसा इसलिए है क्योंकि तुम लोग एक-दूसरे को अच्छाईयों पर उभारते हो और बुराईयों से रोकते हो।

बस यहीं से हम इस बात को भी समझ सकते हैं कि अगर आज हम एक-दूसरे को अच्छाईयों पर नहीं उभार रहे हैं और बुराईयों से नहीं रोक रहे हैं तो हम अच्छी उम्मत नहीं हैं। हमें अपनी हालत पर ख़ुश नहीं होना चाहिए और न ही हमारा इस्लाम असली इस्लाम है।

मुस्लिम जगत में इस इस्लामी क़ानून का फीका पड़ना

इस क़ानून की इस्लाम में कितनी ऊँची जगह है इस बात को समझाने के लिए बहुत सारी हदीसें किताबों में लिखी हुई हैं जिनसे अपने आप आप यह बात साबित हो जाती है कि इस्लाम ने इस क़ानून को सब से ऊपर रखा है लेकिन इस बात को समझने के लिए इतिहास के झरोंकों में झांकना भी ज़रूरी है ताकि यह बात भी समझ में आ जाए कि ऐसा क्या हुआ कि जिस क़ानून को इस्लाम ने इतना ख़ास बनाया था उसे मुस्लिम जगत में धीरे-धीरे भुला क्यों दिया गया?

अहले सुन्नत का एक फ़िरक़ा ''मोतज़ेला'' अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर को उसूले दीन में

---

[1] सूरए आले इमरान/110

मानता है, न कि फ़ुरूए दीन में। शिया कहते हैं कि उसूले दीन पाँच और फ़रूए दीन दस हैं और इन्हीं दस फ़ुरूए दीन में अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर को भी गिनते हैं। उधर मोतज़ेला भी उसूले दीन को पाँच ही मानते हैं मगर इस फ़र्क़ के साथ कि उनका कहना है कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर भी उसूले दीन में से है लेकिन जैसे-जैसे वक़्त आगे बढ़ता गया वैसे-वैसे उनके यहाँ भी किताबों में इस क़ानून का रंग फीका पड़ता गया और फिर दूसरे बहुत सारे इस्लामी क़ानूनों की तरह उनके यहाँ यह भी एक छोटा से क़ानून बनकर रह गया है। समाजी इतिहासकारों का कहना है कि इसकी वजह राजनीति रही है क्योंकि इस क़ानून से बनी उमय्या और बनी अब्बास के ख़लीफ़ाओं को बड़ी दिक़्क़तों का सामना करना पड रहा था इसलिए उन्होंने कुछ ऐसा किया कि अपने आप मोतज़ेला के यहाँ यह क़ानून ढीला पड़ गया। मोतज़ेला के हाथ-पैर बांध दिए गए थे और उनकी मजबूरी हो गई थी कि वह अपनी किताबों में इस क़ानून के बारे में बात न करें या अगर करें भी तो बहुत कम जबकि उनके यहाँ अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर वाला यह इस्लामी क़ानून उसूले दीन में से था।

इंसाफ़ की बात यह है कि ख़ुद हमारे यहाँ भी इस इस्लामी क़ानून का रंग बहुत ही हल्का हो गया है। यहाँ तक कि पिछली कुछ सदियों से अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के बारे में ‘‘तौज़ीहुल मसायल’’ में कुछ भी नहीं लिखा जाता है। जहाँ तक मैं जानता हूँ, इस बारे में आख़िरी किताब शेख़ बहाई की ‘‘जामेए अब्बासी’’ है जो लगभग 4 सदी पहले की है। उसके बाद से ‘‘तौज़ीहुल मसायल’’ में भी इस बारे में कुछ नहीं लिखा जा रहा है। जबकि अम्र बिल मारूफ़ और

नही अनिल मुन्कर बिल्कुल नमाज़-रोज़ा जैसी ही एक इबादत है जिसे किसी भी हाल में नहीं भुलाया जाना चाहिए। यह क़ानून उन दूसरे क़ानूनों की तरह नहीं है जिनके बारे में आज बात करने की ज़रूरत ही नहीं है जैसे ग़ुलामों और कनीज़ों के अहकाम। जब तक दुनिया में ग़ुलाम मौजूद थे तब तक इस बारे में इस्लामी अहकाम पर बात करना ठीक था लेकिन अब जबकि न ग़ुलाम हैं और न कनीज़ तो इस बारे में बात करना भी बेकार है लेकिन अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर का मामला ऐसा नहीं है कि इसे भुला दिया जाए क्योंकि यह तो वह चीज़ है जिसकी हर ज़माने में ज़रूरत है बल्कि इस क़ानून को तो सब से ऊपर रखा जाना चाहिए ताकि हर जगह और हर हाल में इस पर बात हो सके और इसे भुलाया न जाए।

पश्चिमी दुनिया के स्कॉलर्स की बकवास

युरोप के कुछ स्कॉलर्स ने इस्लाम के बारे में एक बात बार- बार लिखी है और यह साबित करना चाहा है कि इस्लाम क़िस्मत और तक़दीर का दीन है यानी एक ऐसा दीन है जिसमें आदमी के हाथ में कुछ भी नहीं है बल्कि सब कुछ अल्लाह के हाथ में है। अल्लाह जैसा चाहता है वैसा करता है, बन्दा तो बस बैठा देखता रहता है। इन लोगों का कहना है कि इस्लाम में इन्सानों के पास कोई आज़ादी नहीं है। जो कुछ करता है अल्लाह करता है और मुसलमान बस यह देखता रहता है कि अल्लाह क्या करने वाला है। इन्सान के हाथ में कुछ भी नहीं है। जब उसके हाथ में कुछ है ही नहीं तो फिर उसकी कोई ड्युटी भी नहीं बनती है।

यह वह बात है जिसका ढिंढोरा कुछ युरोपी न जाने कब से पीटते चले आ रहे हैं।

जबकि सच्चाई यह है कि यह उनकी बकवास है और इससे बढ़कर कुछ भी नहीं। मज़े की बात यह है कि क़ुरआन ने इसी बात पर यहूदियों को बुरी तरह से झिड़का है। जब हज़रत मूसा[अ०] ने उनसे कहा थाः ‘‘ऐ मेरी क़ौम वालो! इस पवित्र जगह पर आगे बढ़ो जिसे अल्लाह ने तुम्हारे लिए लिख दिया है।’’[1] तो उन्होंने हज़रत मूसा[अ०] से कहा था, ‘‘आप अपने पालने वाले के साथ जाइए और जाकर दुश्मने से जंग कीजिए, हम सब यहीं बैठे हुए हैं।’’[2]

जंगे बद्र में अल्लाह के रसूल[स०] ने अपने सहाबियों और साथियों से उनकी राए मांगी थी कि अब जबकि दुश्मन भाग खड़ा हुआ है, तुम लोग क्या कहते हो? दुश्मन का पीछा किया जाए या हम सब मदीने वापस चले जाएं? हर आदमी अपनी-अपनी बात कह रहा था लेकिन अबूज़र या मिक़दाद किंदी ने कहा था कि ऐ अल्लाह के रसूल! हम बनी इस्राईल जैसे नहीं हैं जिन्होंने अपने नबी से कहा था कि ऐ मूसा! आप अपने पालने वाले के साथ जाइए और जाकर दुश्मने से जंग कीजिए, हम सब यहीं बैठे हुए हैं। चूँकि हम लोग बनी इस्राईल जैसे नहीं हैं इसलिए जैसा आप कहेंगे हम सब वैसा ही करेंगे। अगर आप कहेंगे कि समुद्र में कूद जाओ तो हम समुद्र में कूद पड़ेंगे और अगर आप कहेंगे कि आग लगा दो तो हम आग लगा देंगे।

---

[1] सूरए माएदा/21
[2] सूरए माएदा/24

दो तरह की ड्युटी

(1) निजी ड्युटी

इतना ही नहीं बल्कि क़ुरआन ने तो बिल्कुल साफ़-साफ़ इन्सान की ड्युटी की बात सामने रख दी हैः

> हम ने रास्ता दिखा दिया है। अब चाहे वह शुक्र करने वाला बन जाए और चाहे नेमतों को ठुकराने वाला बन जाए।[1]
>
> और हम ने दोनों रास्ते दिखा दिए हैं।[2]
>
> जो आख़िरत (क़यामत) का चाहने वाला है वह उसके लिए वैसी ही कोशिश भी करता है और अगर वह मोमिन भी है तो उसकी कोशिश ज़रूर क़ुबूल की जाएगी।[3]

क़ुरआन में ऐसी बहुत सारी आयतें हैं जिनमें ''जो तुम्हारे हाथों की कमाई है''[4] वाली बात कही गई है।

अल्लाह ने क़ुरआन में हमें बार-बार यह याद दिलाया है कि जो कुछ बुराईयाँ या बुरे काम हम करते हैं उनसे अल्लाह का कोई मतलब नहीं हैः

> हम ने उन पर ज़ुल्म नहीं किया है बल्कि ख़ुद उन्होंने ही अपने ऊपर ज़ुल्म किया है।[5]

---

[1] सूरए दह्र/3
[2] सूरए बलद/10
[3] सूरए इसरा/19
[4] सूरए शूरा/30
[5] सूरए नहल/118

(2) समाजी ड्युटी

पश्चिमी दुनिया के स्कॉलर्स और लिखने वाले इस्लाम के बारे में जो कुछ झूठी और ग़लत-सलत बातें कहते हैं उसका एक जवाब या तोड़ यह है कि इस्लाम के पास एक ऐसा भी क़ानून है जो दुनिया के दूसरे समाजों व क़ौमों में एक दीनी क़ानून के रूप में है ही नहीं। वैसे हमारे कहने का मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि पिछले नबियों ने इस क़ानून को लागू नहीं किया था बल्कि हमारे कहने का मतलब यह है कि आज उनके पास यह क़ानून बचा ही नहीं है।

इस्लाम जहाँ निजी तौर पर और अल्लाह को सामने रखकर आदमी को बहुत सारी ज़िम्मेदारियाँ देता है वहीं उसने समाजी हिसाब से भी आदमी को बहुत सारी ज़िम्मेदारियाँ दी हैं। अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर इसी ज़िम्मेदारी और इसी ड्युटी का नाम है कि ऐ इन्सान! तुझ से बस तेरी निजी ज़िन्दगी के बारे में ही सवाल नहीं किया जाएगा बल्कि तुझ से समाज में रहने वाले दूसरे लोगों के बारे में भी सवाल किया जाएगा।

क्या कोई कह सकता है कि जिस दीन के पास ऐसा क़ानून हो और जो दीन पूरी ताक़त से इस क़ानून को लागू करना चाहता हो वह दीन क़िस्मत और तक़दीर वाला दीन है? इस्लाम तक़दीर को मानता है लेकिन जिस तक़दीर और जिस क़िस्मत की बात वह लोग करते हैं उसका इस्लाम से कोई रिश्ता-नाता नहीं है। इस्लाम ऐसी किसी भी तक़दीर या क़िस्मत को नहीं मानता जिसमें हर काम करने वाला अल्लाह हो और आदमी बैठकर बस तमाशा देखने वाला हो। इस्लाम ऐसी किसी भी तक़दीर या क़िस्मत को नहीं मानता जिसमें आदमी

से सारी आज़ादी छिन जाती हो और उसके पास कोई कंट्रोल न हो। क़ुरआन ऐसी तक़दीर को सिरे से ठुकरा देता है।

क़ुरआन में एक आयत थोड़े से फ़र्क़ के साथ दो बार आई है और यह एक ऐसी आयत है जिसने सारा मामला साफ़ कर दिया हैः

> बेशक! अल्लाह किसी क़ौम की हालत उस वक़्त तक नहीं बदलता जब तक कि वह क़ौम ख़ुद अपने आप को न बदल ले।[1]

इस आयत ने रेत से बने हुए वह सारे घरोंदे तोड़ दिए हैं जिनके बल पर आदमी यह समझता है कि हमें तो कुछ करना ही नहीं है बल्कि जो कुछ करना है बस अल्लाह को करना है। अब इसके बाद भी क्या कोई कह सकता है कि इस्लाम ने अपने मानने वालों के हाथ–पैर बांध रखे हैं? क्या कोई कह सकता है कि इस्लाम में तो हर काम बस अल्लाह करता है?

क़ुरआन ने एक दूसरी आयत में किसी पिछली क़ौम की बर्बादी की तरफ़ यूँ इशारा किया हैः

> ऐसा इसलिए है क्योंकि अल्लाह किसी क़ौम को दी हुई नेमत को उस वक़्त तक नहीं बदलता जब तक कि वह ख़ुद अपने आप में बदलाव न ले आए।[2]

एक और आयत में अल्लाह फ़रमाता हैः

> हम तब तक अज़ाब नहीं करेंगे जब तक कि उनके बीच रसूल न भेज दें।[3]

---

[1] सूरए रअ्द/11
[2] सूरए अन्फ़ाल/53
[3] सूरए इसरा/15

यानी हम किसी भी समाज या किसी भी क़ौम पर तभी अज़ाब करते हैं जब वह लोग बात को समझ गए हों और समझने के बाद अल्लाह के बताए रास्ते पर चलने के बजाए अपने बनाए हुए रास्तों पर चलने लगें।

अल्लाह ऐसा है ही नहीं। वह तब तक किसी क़ौम को नहीं बदलता जब तक कि ख़ुद वह क़ौम अपने आपको बदलने की कोशिश न करे और यह अल्लाह का क़ानून है। क्या अपनी बात साबित करने के लिए हमें कोई दूसरी बात भी चाहिए? क्या इस्लाम के बारे में उल्टी-सीधी बातें करने वाले लोगों को यह आयतें दिखाई नहीं देती हैं? यह क़ुरआन की आयतें हैं, इनके बारे में तो किसी तरह का शक भी नहीं किया जा सकता।

अल्लामा इक़बाल ने इसी आयत से एक बड़ा अच्छा मतलब निकाला है। इक़बाल कहते हैं कि क़ुरआन ने एलान कर दिया है कि ऐ लोगो! इस इंतेज़ार में न रहना कि दूसरे बाहर से आएंगे और आकर तुम्हारे हालात को ठीक करेंगे। अगर कोई क़ौम इस इंतेज़ार में बैठी रहे कि दूसरे आकर उसकी हालत ठीक कर दें तो ऐसी क़ौम की हालत कभी भी अच्छी नहीं हो सकती क्योंकि अंदर से ऐसी क़ौम इस लायक़ है ही नहीं कि उसकी हालत अच्छी हो सके। कोई भी क़ौम उसी वक़्त अपने हालात को बदल सकती है जब वह अपने फ़ैसले ख़ुद करने की ताक़त रखती हो। अगर कोई क़ौम अपने बारे में ख़ुद फ़ैसले लेने की ताक़त पैदा कर ले तो फिर अल्लाह की रहमत और उसके करम की बारिश भी उस क़ौम पर होने लगती है यानी ऐसी क़ौम को अल्लाह की मदद, उसकी नेमतें, उसका करम... सब कुछ मिल जाता है।

अगर बस बैठकर और हाथ पर हाथ धरे तमाशा देखना ठीक होता तो इस काम के लिए सब से अच्छे तो

ख़ुद इमाम हुसैन[अ०] थे। वह बैठे देखते रहते कि कब अल्लाह की रहमत और उसका करम आता है और कब मुस्लिम समाज के हालात बदलते हैं। इमाम हुसैन[अ०] ने ऐसा इसी लिए नहीं किया क्योंकि उनके सामने क़ुरआन की यह आयत मौजूद थीः

> अल्लाह किसी क़ौम की हालत उस वक़्त तक नहीं बदलता जब तक कि वह क़ौम ख़ुद अपने आप को बदलने का फ़ैसला न कर ले।

तभी तो इमाम हुसैन[अ०] भी अपने समाज को बदलने के लिए उठ खड़े हुए थे और यह वह काम था जिसका हुक्म ख़ुद रसूले इस्लाम[स०] देकर इस दुनिया से गए थेः

> जो कोई भी इन हालात को देखे और अपने हाथ व ज़बान से कुछ भी न करे या कहे तो यह अल्लाह का हक़ है कि वह ऐसे आदमी को भी वहीं ले जाए जहाँ उन ज़ालिमों (अत्याचारियों) को ले जाएगा जिन्होंने यह हालात बना दिए हैं।

अब सवाल यह है कि यह काम कैसे किया जाए? कैसे बदला जाए? छोटे-मोटे काम तो हम सभी कर लेते हैं। आसान काम तो कोई भी कर सकता है। जैसे इस्लाम ने हम से कहा है कि जब कोई हज करके आए तो उससे मिलने जाओ। हम हज करके आने वाले से मिलने जाते भी हैं और उसके साथ बैठकर चाय भी पीते हैं या इस्लाम का यह भी हुक्म है कि अगर कोई मर जाए तो उसके जनाज़े में जाओ। यह सब इस्लाम के आसान काम हैं। इस तरह के सारे काम को तो सभी लोग कर लेते हैं लेकिन इस्लाम हमेशा बस इन्हीं कामों के सहारे आगे नहीं बढ़ सकता। ऐसा वक़्त भी आता है

जब इन्सान को हुसैन इब्ने अली[अ०] की तरह उठना पड़ जाता है, अपनी क्रांति और अपना मिशन लेकर घर छोड़ना पड़ जाता है और समाज को बदलने के लिए अपना सब कुछ लुटा देना पड़ता है जिसका असर यह होता है कि सिर्फ़ उस वक़्त के इस्लामी समाज की आँखें ही नहीं खुलतीं बल्कि वह क्रांति एक ऐसी क्रांति में बदल जाती है कि पाँच साल बाद एक अलग रूप में अपना असर दिखाती है, दस साल के बाद एक दूसरे रूप में, तीस साल बाद एक दूसरे रूप में, साठ साल बाद एक तीसरे रूप में, सौ साल व पाँच सौ साल के बाद एक अलग शक्ल में और हज़ार साल के बाद एक बिल्कुल ही अलग रूप में उभर कर सामने आती है जिससे न जाने कितनी दूसरी क्रांतियाँ शुरू हो जाती हैं। यह वही चीज़ है जिसे क़ुरआन ने कहा हैः

> अल्लाह किसी क़ौम की हालत उस वक़्त तक नहीं बदलता जब तक कि वह क़ौम ख़ुद अपने आप को बदलने का फ़ैसला न कर ले।

अल्लाह से मोहब्बत सारी मोहब्बतों से ऊपर है

हम सब अपने बच्चों से मोहब्बत करते हैं। क्या इमाम हुसैन[अ०] अपने बच्चों से मोहब्बत नहीं करते थे? बेशक! वह हम से कहीं बढ़कर अपने बच्चों से मोहब्बत करते थे। इसी तरह ऐसा नहीं है कि हज़रत इब्राहीम[अ०] हम से कम अपने बेटे हज़रत इस्माईल[अ०] से मोहब्बत करते हों बल्कि वह हम से कहीं बढ़कर अपने बेटे से मोहब्बत करते थे क्योंकि वह हम से बड़े इन्सान थे और जो जितना बड़ा इन्सान होता है उसके अंदर उतना ही ज़्यादा इन्सानी एहसास पाया जाता है। जितना हम लोग अपने बच्चों से मोहब्बत करते हैं उससे कहीं बढ़कर

इमाम हुसैन[अ०] अपने बच्चों से मोहब्बत करते थे लेकिन अल्लाह से मोहब्बत के मुक़ाबले में अपने बच्चों से उनकी मोहब्बत कुछ भी नहीं थी क्योंकि इमाम हुसैन[अ०] दुनिया की हर चीज़ से बढ़कर अल्लाह से मोहब्बत करते थे। जब अल्लाह की बात आती थी तो इमाम हुसैन[अ०] दुनिया की हर चीज़ को भूल जाते थे।

किताबों में लिखा हुआ है कि जब इमाम हुसैन[अ०] करबला की तरफ़ जा रहे थे सारे घर वाले उनके साथ-साथ थे। हम लोग इस बात को समझ भी नहीं सकते कि वह क्या हालता रहे होंगे क्योंकि आदमी जब किसी सफ़र पर निकले और उसके साथ उसका छोटा सा बच्चा भी हो तो उस बच्चे के बारे में वह हर पल सोचता रहता है कि इसका क्या होगा?

लिखा हुआ है कि इमाम हुसैन[अ०] आगे बढ़ रहे थे कि रास्ते में उनकी आँख लग गई। रास्ता चलते-चलते अपने घोड़े की गर्दन या काठी पर ही अपना सर रखकर सो गए। अभी कुछ ही पल बीते थे कि उठकर बैठ गए और बोलेः

इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजेऊन[1]

हम अल्लाह के लिए हैं और हमें उसी की तरफ़ पलटकर वापस जाना है।

जैसे ही इमाम हुसैन[अ०] ने यह कहा वैसे ही हर एक आपस में पूछने लगा कि इमाम ने इस वक़्त यह बात क्यों कही है? क्या कोई नई ख़बर आई है? इमाम हुसैन[अ०] अपने बेटे हज़रत अली अकबर[अ०] से बड़ी मोहब्बत करते थे और इस बात को कहते भी रहते थे। हज़रत अली अकबर[अ०] के अंदर वह सारी अच्छाईयाँ थीं

---

[1] सूरए बक़रा/156

जिनकी वजह से एक बाप अपने बेटे से टूटकर मोहब्बत करता है मगर सब से बड़ी बात यह थी कि हज़रत अली अकबर[अ०] दिखने-दिखाने और आदतों में बिल्कुल अल्लाह के रसूल[स०] के जैसे थे और इस वजह से इमाम हुसैन[अ०] को अपने इस बेटे से कुछ ज़्यादा ही मोहब्बत थी। अब अगर किसी का ऐसा बेटा ख़तरे में हो तो उसके बाप पर क्या बीतेगी? बहरहाल हज़रत अली अकबर[अ०] आगे बढ़कर अपने बाबा के पास आए और उनसे पूछने लगे कि बाबा! क्या बात है, आपने इस वक़्त ''इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजेऊन'' क्यों कहा? इमाम हुसैन[अ०] ने जवाब दिया कि बेटा! मैंने अभी ख़्वाब में एक आवाज़ सुनी थी कि कोई कह रहा था कि एक काफ़िला जा रहा है लेकिन यह मौत है जो इस क़ाफ़िले को खींचे लिए जा रही है। जो आवाज़ मैंने अभी सुनी है उससे मैं यह समझ रहा हूँ कि अब मौत हमारे सर पर आ पहुँची है। अब हम सब उस मौत की तरफ़ बढ़ रहे हैं जिसका आना तय हो गया है। इमाम हुसैन[अ०] ने जब यह बात कही तो हज़रत अली अकबर[अ०] ने बिल्कुल उसी तरह की बात कही जैसी हज़रत इस्माईल[अ०] ने अपने बाबा हज़रत इब्राहीम[अ०] से कही थी।[1] अली अकबर[अ०] ने कहा कि बाबा! क्या हम

---

[1] जब हज़रत इब्राहीम[अ०] ने अपने बेटे इस्माईल[अ०] से कहा था कि बेटा! मैं बराबर कई दिन से ख़्वाब देख रहा हूँ और मुझे लग रहा है कि मेरा यह ख़्वाब कोई आम ख़्वाब नहीं है बल्कि अल्लाह मुझे तुम्हारा सर काटने का हुक्म दे रहा है (इब्राहीम[अ०] को इस काम के पीछे छुपे राज़ के बारे में नहीं पता था लेकिन इतना भरोसा ज़रूर था कि अल्लाह ऐसा करने का हुक्म दे रहा है)। अपने बाबा की बात सुनकर इस्माईल[अ०] ने यह नहीं कहा कि बाबा! यह तो बड़ी अच्छी बात है कि आपने ख़्वाब में यह देखा है क्योंकि अगर ख़्वाब में किसी को मरते हुए देखो तो उसकी उम्र बढ़ जाती है। इन्शाअल्लाह! मेरी उम्र भी बढ़ गई है। ऐसा कुछ नहीं कहा बल्कि कहा कि ऐ बाबा! जिस काम का आपको हुक्म दिया गया है वह काम कर डालिए। इन्शाअल्लाह! आप मुझे सब्र करने वालों में से पाएंगे। (सूरए साफ़्फ़ात/102) उसके बाद जैसे ही हज़रत इब्राहीम ने अपने बेटे का सर काटना चाहा वैसे ही अल्लाह की 'वही' आ गईः फिर जब दोनों ने अल्लाह के सामने अपना सर झुका दिया और बाप

हक़ पर नहीं हैं? क्या हम सच्चे रास्ते पर नहीं हैं? इमाम हुसैन[अ०] ने कहा कि बेटा! क्यों नहीं! हम हक़ पर ही हैं। फ़ौरन बेटे ने कहा कि बाबा! जब ऐसा है तो फिर हम जिस रास्ते पर चल रहे हैं हमें उसी रास्ते पर चलते रहना चाहिए। अब आगे मौत हो या ज़िन्दगी, क्या फ़र्क़ पड़ता है। असल बात यह है कि हम सीधे रास्ते पर चल रहे हैं। इमाम हुसैन[अ०] ने अपने बेटे की यह सारी बातें सुनी तो बड़े ख़ुश हुए। इमाम हुसैन[अ०] यह बात सुनकर कितना ख़ुश हुए थे इसे इमाम की इस दुआ से समझा सकता हैः बेटा! मैं तो तुम्हारे जैसे लायक़ बेटे को कुछ भी नहीं दे सकता लेकिन मेरी अल्लाह से दुआ है कि ऐ अल्लाह! तू मेरी जगह इस लायक़ बेटे को वह सब दे दे जो इसे मिलना चाहिए।

जिसका अली अकबर[अ०] जैसा बेटा हो उसका कितना दिल चाहता होगा कि कोई सही वक़्त आ जाए तो अपने बेटे के लिए कोई अच्छा सा काम कर दिया जाए, उसे कुछ दे दिया जाए या उसे कोई ऐसी चीज़ दे दी जाए जो हमेशा उसके काम आ सके। अब ज़रा सोचिए! आशूरा की दोपहर आ पहुँची है। यही जवान अपने बाबा के सामने जंग के मैदान में जा रहा है और अब मैदान में अपनी बहादुरी के रंग दिखा रहा है। इस जवान ने दुश्मन की फ़ौज के बहुत सारे सिपाहियों को क़त्ल कर दिया था। इसके भी चोटें आई थीं और इस ने भी दुश्मनों को भरपूर चोटें पहुँचाई थीं लेकिन इसकी

ने बेटे को माथे के बल लिटा दिया और हम ने आवाज़ दी कि ऐ इब्राहीम! तुम ने अपना ख़्वाब सच्चा कर दिखाया। (सूरए साफ़्फ़ात/103-105) ऐ इब्राहीम। हम यह कभी नहीं चाहते थे कि तुम अपने बेटे का सर काटो क्योंकि ऐसे किसी काम से हमें भला क्या फ़ाएदा होने वाला था। हम तो बस यह चाहते थे कि यह पता चल जाए कि तुम दोनों बाप-बेटे अल्लाह के हुक्म के सामने कितना सर झुकाते हो और तुम दोनों ने यह काम बहुत अच्छी तरह से कर दिखाया है कि बाप अपने बेटे को क़ुरबान करने और बेटा अपने बाप के हाथों क़ुरबान होने पर राज़ी हो गया। इस से बढ़कर हम और कुछ नहीं चाहते थे। बस! अपने बेटे का सर मत काटो।

प्यास का यह हाल था कि गला सूखा हुआ था और ज़बान अकड़ी हुई थी। अली अकबर[अ०] मैदान से वापस आए और जब प्यास से टूटने लगे तो अपने बाबा के पास वापस आकर बोले कि ऐ बाबा! प्यास मुझे मारे डाल रही है। इन हथियारों के बोझ से मेरी जान निकली जा रही है। अगर कहीं से ज़रा सा पानी मिल जाता तो मेरी ताक़त वापस आ जाती और फिर मैं बताता कि जिहाद कैसे किया जाता है। इतना सुनकर इमाम हुसैन[अ०] ने अपने बेटे को जो जवाब दिया वह यह हैः ऐ मेरे बेटे! तुम बहुत जल्दी ही शहीद होने वाले हो और उसके बाद तुम्हारे दादा तुम्हें अपने हाथों से पानी पिलाएंगे।

(३)

अम्र बिल मारूफ़ **और** नही अनिल मुन्कर **की शर्तें**

> यह लोग तौबा करने वाले, इबादत करने वाले, अल्लाह की हम्द (तारीफ़) करने वाले, अल्लाह के लिए सफ़र करने वाले, रूकू करने वाले, सजदे करने वाले, अच्छे कामों का हुक्म देने वाले, बुराईयों से रोकने वाले और अल्लाह के हुदूद (क़ानूनों) को बचाने वाले हैं और ऐ रसूल! इन्हें जन्नत की ख़ुशख़बरी दे दीजिए।[1]

यहाँ तक आने के बाद हम यह बात अच्छी तरह से समझ गए हैं कि हुसैनी क्रांति के पीछे कुल मिलाकर तीन फ़ैक्टर थेः एक यज़ीद की बैअत न करना, दूसरा कूफ़ियों का इमाम हुसैन[अ०] को अपने यहाँ बुलाना और तीसरा अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर। हम यह

---

[1] सूरए तौबा/112

बात भी समझ गए हैं कि इन तीनों फ़ैक्टर्स में से हर एक के मुक़ाबले में इमाम हुसैन[अ०] की अलग-अलग तरह की इस्लामी ड्युटी बनती थी और इन तीनों फ़ैक्टर्स के सामने इमाम ने अलग-अलग तरह का रिएक्शन दिखाया था। साथ ही हम इस पर भी बात कर चुके हैं कि इन तीनों फ़ैक्टर्स में से हर फ़ैक्टर से हुसैनी क्रांति को एक अलग तरह की वेल्यु मिल रही है। अगर हम बस कूफ़ियों के बुलावे को ध्यान में रखें तो करबला का एक अलग तरह का रूप सामने आता है। अगर हम यज़ीद की बैअत न करने वाले फ़ैक्टर को समाने रखें तो करबला का एक दूसरा ही रूप दिखाई पड़ता है और इस रूप में करबला बहुत ऊँचाई पर दिखाई पड़ती है। अगर हम अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर (अच्छाईयों की तरफ़ बुलाना और बुराईयों से रोकना) वाले फ़ैक्टर को देखें तो करबला की ऊँचाई बहुत बढ़ जाती है और हमें करबला आसमान को छूती नज़र आती है क्योंकि कूफ़े वाले फ़ैक्टर में कम से कम 50% या उससे कुछ कम जीत की उम्मीद बहरहाल थी लेकिन बैअत न करने वाले फ़ैक्टर में तो यह उम्मीद भी नहीं थी। यज़ीद की बैअत न करने का खुला मतलब अपनी जान को पूरी तरह से ख़तरे में डालना था। उधर बैअत वाले फ़ैक्टर और अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर वाले फ़ैक्टर के बीच में भी बहुत गहरा फ़र्क़ है। बैअत वाले फ़ैक्टर में दुश्मन इमाम हुसैन[अ०] से कुछ मांग रहा था यानी एक ऐसा काम करवाना चाह रहा था जो इस्लाम के हिसाब से हराम व ग़लत था। इसी लिए बैअत मांगी गई तो इमाम हुसैन[अ०] ने साफ़-साफ़ मना कर दिया। अगर हम दूसरी सारी चीज़ों को भूलकर बस इसी एक फ़ैक्टर को ध्यान में रखें तो हम यह कह

सकते हैं कि अगर इमाम हुसैन[अ०] से बैअत न मांगी जाती तो इमाम हुकूमत से टक्कर न लेते।

यही बात पहले वाले फ़ैक्टर में भी है कि अगर दूसरी सारी चीज़ों को भूलकर बस इसी एक फ़ैक्टर को ध्यान में रखें तो हम यह कह सकते हैं कि अगर कूफ़ियों ने इमाम हुसैन[अ०] को न बुलाया होता इमाम मदीने से बाहर कभी न जाते। चूँकि कूफ़ियों ने हज़ारों ख़त लिखकर इमाम हुसैन[अ०] को अपने यहाँ बुलाया था इसलिए इमाम को मजबूर होकर वहाँ जाना पड़ा था।

लेकिन तीसरा फ़ैक्टर सब से अलग है। अगर अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर को ध्यान में रखें तो हमें साफ़ दिखता है कि पिछले दोनों फ़ैक्टर्स के उलट इस फ़ैक्टर में ख़ुद इमाम हुसैन[अ०] खुलकर सामने आ गए थे क्योंकि इस्लामी समाज का रूप बिगाड़ दिया गया था, अल्लाह के हलाल को हराम और हराम को हलाल बना दिया गया था, हर जगह बुराईयों का राज था और समाज पूरी तरह से अल्लाह के रास्ते से हट गया था। इमाम हुसैन[अ०] समाज का यह हाल देख ही नहीं सकते थे जिसकी वजह से वह ख़ुद ही अपना मिशन लेकर मदीने से बाहर निकल आए थे। इसी लिए इस तीसरे वाले फ़ैक्टर की वजह से हुसैनी क्रांति आसमान की ऊँचाईयों को छूती दिखाई पड़ती है। इस फ़ैक्टर ने करबला का चेहरा बड़ा नूरानी बना दिया है जिसकी रौशनी आज तक सारी दुनिया पर पड़ रही है। इसी एक फ़ैक्टर की वजह से आज तक दुनिया में उठने वाली क्रांतियाँ हुसैनी क्रांति से रौशनी ले रही हैं। यही वह फ़ैक्टर है जिसकी वजह से हुसैनी क्रांति से न जाने कितने दीप जले हैं और अभी भी जल रहे हैं।

इस फ़ैक्टर ने हुसैनी क्रांति को बहुत ऊँचाई पर पहुँचा दिया है और इसी लिए हमारे लिए भी ज़रूरी है

कि हम भी इस्लाम के इस अटल क़ानून ''अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर'' को पहचानें और समझें। यह आख़िर कौन सा क़ानून है जिसकी इस्लाम में इतनी ऊँची जगह है? यह आख़िर कौन सा क़ानून है जिसके लिए इमाम हुसैन[अ०] जैसी हस्ती को भी अपनी जान देना पड़ी, अपना ख़ून देना पड़ा, अपने प्यारों का ख़ून देना पड़ा और करबला में अपना सब कुछ देना पड़ा जिसका दुनिया में दूसरा कोई नमूना कहीं भी नहीं मिलता। यह इमाम हुसैन[अ०] का ही करिश्मा है कि आज लगभग तेरह सौ साल[1] बाद भी हम गवाही दे रहे हैं।:

> हम गवाही देते हैं कि आपने नमाज़ को क़ायम (बाक़ी) रखा है, ज़कात[2] दी है, अच्छाईयों का हुक्म दिया है, बुराईयों से रोका है और अल्लाह के रास्ते पर चलते हुए अपनी सारी कोशिशों के साथ जिहाद किया है।[3]

ध्यान देने की बात यह है कि जब हम *ज़ियारते वारिसा* में कहते हैं कि ''हम गवाही देते हैं'' तो यह कौन सी गवाही है? हम किस गवाही की बात करते

---

[1] शहीद मुतह्हरी ने यह बात अब से क़रीब चालीस साल पहले कही थी। अब तो करबला को लगभग चौदह साल हो चुके हैं।

[2] ज़कात सिर्फ़ पैसा देने का ही नाम नहीं है बल्कि जैसे पैसे पर ज़कात निकलती है वैसे ही सोच की भी ज़कात होती है, बदन की भी ज़कात होती है, हाथ-पैरों की भी ज़कात होती है, ज़बान की भी ज़कात होती है, आँख, नाक और कान की भी ज़कात होती है यानी जो नेमत भी अल्लाह ने दी है उसकी एक ज़कात है। जब आदमी अल्लाह की दी हुई किसी नेमत को दूसरे लोगों की भलाई में इस्तेमाल करता है तो असल में वह उस नेमत की ज़कात दे रहा होता है। सूरए बक़रा की आयत/3 में अल्लाह फ़रमाता है कि मुत्तक़ीन (तक़वा वाले) वह लोग हैं जो ग़ैब पर ईमान रखते हैं, नमाज़ क़ायम करते हैं और जो कुछ हम ने उन्हें दिया है उसमें से दूसरों को देते हैं। जब मासूम इमाम से इस आयत के बारे में सवाल किया गया तो इमाम ने फ़रमाया कि इस आयत में सिर्फ़ माल और पैसे की बात नहीं की जा रही है बल्कि इसका एक दूसरा नमूना यह है कि अगर कोई आलिम (पढ़ा-लिखा) ऐसी काम आने वाली बातें जानता हो जो दूसरे नहीं जानते और वह आलिम वह बातें दूसरों को सिखा दे तो इसे उसके इल्म की ज़कात कहा जाएगा।

[3] ज़ियारते वारिसा

हैं? आम तौर पर हम लोग किसी मामले में जब कोर्ट जाते हैं तभी गवाही की बात आती है। जब कोर्ट में किसी केस में हम अपनी बात साबित नहीं कर पाते हैं तो कहते हैं कि हमारे पास सुबूत के तौर पर गवाह भी है। फिर गवाह आता है और कोर्ट में सब के सामने गवाही देता है। अब सवाल यह है कि ज़ियारते वारिसा में हम किस चीज़ की गवाही देते हैं? किसके सामने गवाही देते हैं? क्या हम अल्लाह के सामने गवाही देते हैं? और यह गवाही किसकी भलाई में होती है? क्या यह गवाही इमाम हुसैन[अ०] की भलाई में होती है?

उलमा ने यहाँ एक बड़ी अच्छी बात कही है और वह यह है कि आदमी कभी-कभी ऐसी बात भी कहता है जो सुनने वाले को समझाने के लिए नहीं होती है बल्कि इसलिए होती है ताकि बात कहने वाला सामने वाले को यह बता सके कि मैं इस बात से यह समझा हूँ। ऐसा बहुत होता है। हम सब अपनी आम ज़िन्दगी में ऐसा करते रहते हैं। हम भी कभी-कभी सामने वाले को सुनाने के लिए ऐसी बात कह देते हैं जो वह पहले से जानता है। हम भी जानते हैं कि वह जानता है मगर सुनाते इसलिए हैं कि उसे भी पता चल जाए कि हम भी यह बात जानते हैं और मानते हैं।

ज़ियारते वारिसा में जब हम गवाही देते हैं तो असल में हम यह कहना चाह रहे होते हैं कि ऐ इमाम हुसैन! हर समझदार आदमी की तरह मैं भी इस बात को मानता हूँ और इस बात की गवाही देता हूँ कि आपका मिशन समाज में अच्छाईयों को फैलाना और बुराईयों को मिटाना था यानी मुझे पता है कि आपने सिर्फ़ कूफ़ियों के बुलाने पर अपना शहर मदीना नहीं छोड़ा था बल्कि अभी तो कूफ़ियों ने आपको बुलाया भी नहीं था कि आपका मिशन शुरू हो गया था। पहले आपने अपना

मिशन छेड़ा था और बाद में कूफ़ियों ने आपको अपने यहाँ बुलाया था। मैं इस बात की गवाही देता हूँ और इस बात को मानता हूँ कि आपकी जंग सिर्फ़ इसलिए नहीं थी कि आपने यज़ीद की बैअत नहीं की थी बल्कि आपने अपना मिशन किसी और ही वजह से छेड़ा था। आपने इसलिए अपना मिशन छेड़ा था ताकि समाज में अच्छाईयों को फैला सकें और बुराईयों की जड़ काट सकें यानी इस्लाम के एक बुनियादी क़ानून ''अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर'' को समाज में लागू कर सकें।

अल्लाह के नबियों की क्रांतियों में पाई जाने वाली ख़ास बात

यहाँ तक आने के बाद हम यह बात समझ गए हैं कि करबला के पीछे सब से बड़ा फ़ैक्टर अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर था लेकिन अल्लाह के भेजे हुए नबियों, रसूलों और उसके ख़ास बन्दों की लाई हुई क्रांतियों में एक ख़ास बात और भी पाई जाती है जिसकी वजह से उनकी लाई हुई क्रांतियाँ दूसरे आम इन्सानों की लाई हुई क्रांतियों से अलग हो जाती हैं।

आदमी कोई भी काम करे उस काम के अंदर दो चीज़ें ज़रूर पाई जाती हैंः एक ढाँचा और दूसरे रूह[1]। हो सकता है कि दो लोग एक ही काम एक जैसा करें लेकिन दोनों के काम एक जैसे भी होंगे और अलग-अलग भी। यह दोनों काम अपने ढाँचे और रूप की वजह से एक जैसे होंगे। जैसे दो आदमी नमाज़ पढ़ रहे हों और दोनों चार-चार रकअत नमाज़ पढ़ रहे हों। यहाँ दोनों की नमाज़ों में कोई फ़र्क़ नहीं है लेकिन हो

---

[1] जान

सकता है कि एक आदमी अपने दिल की गहराई से और सच्ची नियत से नमाज़ पढ़ रहा हो और दूसरा दिखावे के लिए पढ़ रहा हो। यह बिल्कुल सामने का फ़र्क़ है क्योंकि जो सच्ची नियत से नमाज़ पढ़ रहा है उसकी नमाज़ दूसरे की नमाज़ से हज़ार गुना अच्छी है।

उस ज़माने में बहुत से लोग अल्लाह के लिए जिहाद कर रहे थे लेकिन हज़रत अली[अ०] के लिए ही क्यों कहा गया कि जंगे ख़न्दक़ में उनकी तलवार से होने वाला हमला दोनों दुनियाओं की इबादत से अफ़ज़ल (बेहतर) था। ऐसा इसी लिए कहा गया था क्योंकि हज़रत अली[अ०] उस जगह पहुँचे हुए थे जहाँ पहुँचकर आदमी की ''मैं'' मिट जाती है और उसके सामने बस अल्लाह होता है। अल्लाह से हटकर वह कुछ देखता ही नहीं है। हज़रत अली[अ०] जंगे ख़न्दक़ में अम्र बिन अब्द्वद से आमने-सामने जंग कर रहे थे। इमाम उसका सर काटने वाले थे कि उसने इमाम के ऊपर थूक दिया था लेकिन जैसे ही उसने यह नीच काम किया, फ़ौरन इमाम पीछे हट गए कि कहीं मेरा ग़ुस्सा अल्लाह के लिए होने वाले इस जिहाद में न मिल जाए। असल में हज़रत अली[अ०] यह चाह रहे थे कि जब उनके हाथ से अल्लाह के लिए कोई काम हो तो नज़र के सामने बस अल्लाह हो, अल्लाह से हटकर कुछ भी न हो।

यही वह चीज़ है जो हमें बस नबियों, रसूलों, इमामों और अल्लाह के ख़ास बन्दों के यहाँ ही दिखती है। नबियों और इमामों से हटकर यह चीज़ कहीं नहीं मिल सकती।

आयत की तफ़सीर

> यह लोग तौबा करने वाले, इबादत करने वाले, अल्लाह की हम्द (तारीफ़) करने वाले, अल्लाह के लिए सफ़र करने वाले, रूकू करने वाले, सजदे करने वाले, अच्छे कामों का हुक्म देने वाले, बुराईयों से रोकने वाले और अल्लाह के हुदूद (क़ानूनों) को बचाने वाले हैं और ऐ रसूल! इन्हें जन्नत की ख़ुशख़बरी दे दीजिए।[1]

यह सूरए तौबा की आयत है। आगे चलकर इसी सूरे में यह भी है कि यह लोग अल्लाह की तरफ़ पलटकर आने वाले हैं। उलमा कहते हैं कि अल्लाह की तरफ़ सफ़र तौबा से शुरू होता है क्योंकि तौबा का मतलब ही पलटना होता है। अल्लाह के रास्ते से भटक जाने वाला आदमी जब वापस पलटकर अल्लाह के रास्ते पर आता है तो इसे तौबा कहते हैं। तौबा के बाद ही आदमी अल्लाह की इबादत करने वाला बन सकता है और जब आदमी अल्लाह की इबादत करता है तो फिर दूसरे किसी की भी इबादत नहीं करता। जब आदमी इस जगह तक पहुँच जाता है तो उसके बाद वह बस अल्लाह का हुक्म मानता है। अल्लाह से हटकर किसी की भी बात नहीं मानता यानी बस अल्लाह के बताए रास्ते पर चलता है।

आयत कह रही है कि यह लोग अल्लाह की हम्द (तारीफ़) करने वाले हैं और इसी वजह से यह लोग किसी भी दूसरी चीज़ की हम्द नहीं करते हैं बल्कि किसी दूसरी चीज़ को हम्द के लायक़ ही नहीं समझते हैं।

---

[1] सूरए तौबा/112

यह लोग अल्लाह के लिए सफ़र करने वाले हैं। क़ुरआन की तफ़सीरों में आयत के इस टुकड़े के बारे में बहुत सारी बातें कही गई हैं जैसे कुछ उलमा ने कहा है कि इसका मतलब यह है कि यह लोग रोज़े रखते हैं यानी रूहानी (Spritual) सफ़र करते हैं जो रोज़े के ज़रिए होता है लेकिन दूसरे बहुत सारे उलमा जैसे अल्लामा तबातबाई ने अपनी किताब तफ़सीरे अल-मीज़ान में इस बात को सही नहीं माना है। एक बात यह भी कही जाती है कि यह वह लोग हैं जो ज़मीन पर सैर करते हैं क्योंकि क़ुरआन ने इन्सान को ज़मीन पर सैर करने का हुक्म दिया है। क़ुरआन की ज़बान में ज़मीन पर सैर करने का मतलब यह है कि जब आदमी इस दुनिया के शहरों-शहरों और मुल्कों-मुल्कों में घूमे-फिरे तो दुनिया में फैली हुई इतनी सारी चीज़ों पर ध्यान दे, न कि बस घूमता फिरे और मज़े लेता रहे। इस्लाम के हिसाब से इन्सान की उम्र एक बड़ी अनमोल चीज़ है जिसे बस दुनिया का तमाशा देखने में बर्बाद नहीं करना चाहिए लेकिन अगर आदमी घूमे-फिरे और अल्लाह की बनाई इस दुनिया की गहराई से स्टडी करे और चीज़ों को देखकर सीख ले तो फिर यह काम इस्लाम की नज़र में बहुत बड़ा और क़ीमती बन जाता है। तभी तो क़ुरआन ने कहा है कि ऐ रसूल! कह दीजिए कि ज़मीन पर सैर करो।[1]

आगे चलकर ऊपर वाली आयत कहती है कि यह लोग रूकू और सजदे करने वाले भी हैं। रूकू में जाते हैं तो कहते हैं कि *सुब्हा-न रब्बियल अज़ीमि व बिहम्दिह* और सजदे में जाते हैं तो कहते हैं कि *सुब्हा-न रब्बियल आला व बिहम्दिह*।

---

[1] सूरए अन्आम/11

आख़िर में आयत कहती है कि यह लोग अच्छे कामों का हुक्म देने वाले और बुराईयों से रोकने वाले भी हैं। यानी जिन लोगों के अंदर ऊपर वाली यह सारी बातें होती हैं वह अच्छे आदमी बन जाते हैं। जब यह लोग अच्छे आदमी बन जाते हैं तो फिर दूसरों को भी अच्छा बनाना चाहते हैं। बिगड़े हुए समाज को सही रास्ते पर लाना चाहते हैं यानी रिफ़ार्म करना चाहते हैं। जो आदमी ख़ुद ही बुरा हो वह भला दूसरों को कैसे अच्छा बना सकता है? बस वही लोग समाज को अच्छा बना सकते हैं जो पहले ख़ुद भी अच्छे बन गए हों।

हज़रत अली[अ0] की एक हदीस

हज़रत अली[अ0] फ़रमाते हैंः

> जो आदमी अपने आपको लोगों का सरदार बनाना चाहता है उसे चाहिए कि दूसरों को सिखाने से पहले अपने आप को सिखाए।[1]

यानी अगर आदमी दूसरों को कुछ सिखाना चाहता है, उन्हें रास्ता दिखाना चाहता है, उनके बीच अच्छी बातें फैलाना चाहता है या उनका सरदार बनना चाहता है तो इस काम के लिए ज़रूरी है कि सब से पहले वह अपने आप को सुधारे, अपने आप को सिखाए और अपने अंदर के शैतान को निकाल बाहर करे। पहले अपने आप को सुधारे और उसके बाद दूसरों को सुधारने की कोशिश करे। अगर वह ऐसा कर लेता है तभी वह यह दावा कर सकता है कि मैं समाज को ठीक कर सकता हूँ, लोगों को सिखा सकता हूँ या उन्हें सही रास्ता दिखा सकता हूँ।

---

[1] नहजुल बलाग़ा, हिकमत/70

एक दूसरी हदीस में हज़रत अली[अ०] फ़रमाते हैंः

> जब तक बोलने और कहने की बात हो तो हक़ का मैदान सब से बड़ा है लेकिन जब करने की बारी आती है तो यही मैदान सब से छोटा बन जाता है।[1]

यानी अगर कहीं स्पीच देना हो, ज़बान से बताना हो या समझाना हो तो हर आदमी बोलने और समझाने लगता है लेकिन जैसे ही कुछ करने की बारी आती है तो हक़ पर चलने वाले बहुत कम रह जाते हैं। फिर यह मैदान इतना छोटा हो जाता है कि एक क़दम उठाना भी भारी हो जाता है।

यही बात क़ुरआन की ऊपर वाली आयत भी कह रही है कि जब आदमी तौबा कर लेता है, अल्लाह की इबादत कर लेता है, अल्लाह की हम्द कर लेता है, दुनिया की सैर कर लेता है और रूकू व सजदे कर लेता है तब जाकर अच्छाईयों का हुक्म दे पाता है और बुराईयों से रोक पाता है। इतने सारे काम करने के बाद ही आदमी ऐसा बन पाता है कि वह अपने समाज को अच्छे रास्ते पर और ऊपर ले जा सके। जब आदमी यह सारे काम कर लेता है तो फिर अल्लाह उसे ख़ुशख़बरी सुनाता है कि तुम्हारा ठिकाना जन्नत है। अब अगर आदमी दूसरे सारे काम कर ले मगर अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर न करे यानी दूसरों को अच्छाईयों की तरफ़ न बुलाए और बुराईयों से न रोके तो वह कहीं का नहीं रहेगा। इतना ही नहीं बल्कि अगर समाज में अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर तो हो मगर अच्छाईयों की तरफ़ बुलाने वाले और बुराईयों

---

[1] नहजुल बलाग़ा, ख़ुतबा/214

से रोकने वाले ख़ुद ही अच्छे काम न कर रहे हों और बुराईयों से दूर न हों तब भी कोई फ़ाएदा नहीं होगा।

हज़रत अली[अ०] फ़रमाते हैंः

> अल्लाह लानत करे उन लोगों पर जो दूसरों से तो अच्छे काम करने के लिए कहते हैं मगर ख़ुद इसके उलट करते हैं। दूसरों को तो बुरे कामों से रोकते हैं मगर ख़ुद ही बुरे काम करते फिरते हैं।[1]

यानी जो लोग तौबा करने वाले, इबादत करने वाले, अल्लाह की हम्द करने वाले, दुनिया की सैर करने वाले, रूकू करने वाले और सजदे करने वाले न हों और फिर अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर भी कर रहे हों तो ऐसे लोगों पर अल्लाह की लानत है।

यहीं से हमें यह बात आसानी से समझ में आ जाती है कि करबला की क्रांति को यह ऊँचाई अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर से ही मिली है। इसलिए बहुत ज़रूरी है कि हम इस बात को भी समझने की कोशिश करें कि आख़िर इस इस्लामी क़ानून में ऐसी कौन सी बात है कि इमाम हुसैन[अ०] जैसी हस्ती को भी अपनी जान देना पड़ी और दूसरों को भी देना चाहिए।

इस्लाम को बचाने वाला क़ानून

अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर वह क़ानून है जिससे इस्लाम आज तक बचा हुआ है। अगर यह क़ानून इस्लामी समाज से उठ जाए तो सिरे से इस्लाम ही मिट जाएगा। यही वह क़ानून है जिसकी वजह से एक मुसलमान दूसरे मुसलमानों का ध्यान रखता है। क्या

[1] नहजुल बलाग़ा, ख़ुतबा/129

कोई ऐसी फ़ैक्ट्री बची रह सकती है जिसमें ऐसे इंजीनियर न हों जो बराबर उस फ़ैक्ट्री की मशीनों और मामलों को चेक करते रहें कि कौन सी मशीन ख़राब है और कौन सी ठीक है। क्या कोई इंस्टिट्यूट बिना किसी देख-रेख के चल सकता है? यही मामला इस्लामी समाज का भी है बल्कि 100% इस से भी बढ़कर। दुनिया में भला ऐसा कौन सा आदमी है जिसे किसी डॉक्टर की ज़रूरत न हो? दो ही रास्ते हैं कि या तो आदमी ख़ुद ही अपनी बीमारी का इलाज करने वाला डॉक्टर हो या इलाज कराने के लिए दूसरे डॉक्टरों के पास जाए। आँख का डॉक्टर, कान का डॉक्टर, दिमाग़ का डॉक्टर, पेट का डॉक्टर... इन्सान को अपनी ज़िन्दगी में तरह-तरह के डॉक्टरों की ज़रूरत पड़ती है ताकि उसका बदन ठीक-ठाक काम करता रहे। जब आदमी के बदन को डॉक्टर चाहिए तो क्या आदमियों से मिलकर बनने वाले समाज को किसी देख-रेख करने वाले की ज़रूरत नहीं होगी? बिल्कुल होगी और बिना देख-रेख के समाज ठीक से चल ही नहीं सकता।

इमाम हुसैन[अ०] इस्लाम के इसी बुनियादी क़ानून को बचाने के लिए शहीद हुए थे। उस क़ानून को बचाने के लिए शहीद हुए थे जो इस्लाम का सब से बड़ा क़ानून है। इमाम हुसैन[अ०] इसी क़ानून को लागू करने के लिए शहीद हुए थे कि अगर यह क़ानून समाज से उठ गया तो सारा समाज टूट-फूट जाएगा। यह वह क़ानून है जिस पर इस्लाम का पूरा ढाँचा टिका हुआ है और इस बारे में आयतें और हदीसें बहुत ज़्यादा हैं।

आइए! अब देखते हैं कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर की शर्तें क्या-क्या हैं यानी अगर कोई अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करना चाहे तो

उसे क्या-क्या करना होगा और किन हालात में करना होगा।

इसके लिए सब से पहले हमें यह समझना होगा कि ''मारूफ़'' और ''मुन्कर'' का क्या मतलब है। यानी अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर किसे कहते हैं।

इस्लाम चाहता है कि नमाज़-रोज़ा, लेन-देन, आचार-सदाचार, घरेलू मामलों... की तरह अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर भी पहले से बंधे-टिके न रहें और इसी लिए ''मारूफ़'' लफ़्ज़[1] इस्तेमाल किया है यानी कोई भी अच्छा काम। अच्छे कामों का हुक्म देना ज़रूरी है। इसके मुक़ाबले में ''मुन्कर'' लफ़्ज़ इस्तेमाल किया है यानी कोई भी बुरा काम। इस्लाम ने यह नहीं कहा कि शिर्क, झूठ, ग़ीबत, दिखावा या सूद बल्कि कहा ''मुन्कर'' यानी कोई भी बुरा काम। इस बात को यूँ भी कहा जा सकता है कि इस्लाम चाहता है कि जो भी अच्छा काम हो उसके बारे में लोगों को बताओ और जो भी बुरा काम हो उससे उन्हें रोको।

इसी तरह ''अम्र'' यानी कहना या हुक्म देना और ''नही'' यानी रोकना। लेकिन हुक्म देने का क्या मतलब है? क्या बस ज़बान से हुक्म दिया जाए? क्या अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर बस ज़बान से होता है? क्या बस ज़बान से अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करना चाहिए?

ऐसा नहीं है बल्कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर तीन तरह से हो सकता हैः एक दिल से, दूसरा ज़बान से और तीसरा हाथ-पैर से यानी आदमी को हर तरह से अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करना है।

---

[1] शब्द

इमाम अली[अ०] से किसी ने कहा कि क़ुरआन ने ज़मीन पर चलने-फिरने वालों के बारे में कहा है कि यह मुर्दा हैं, इसका क्या मतलब है? इमाम ने फ़रमाया कि लोग कई तरह के होते हैंः कुछ लोग बुराईयों को देखते रहते हैं और उनके दिल में उन बुराईयों के ख़िलाफ़[1] एक आग सी लगी होती है। जैसे ही यह आग उनके दिल में लगती है वैसे ही यह उनके दिमाग़ तक पहुँच जाती है और फिर उनकी ज़बान भी उन बुराईयों को बुरा कहने लगती है और फिर वह लोगों को सही रास्ता दिखाने की कोशिश करने में लग जाते हैं। यह लोग यहीं पर नहीं रूकते बल्कि आगे बढ़कर अपने हाथ-पैरों से भी बुराईयों को रोकने की कोशिश करते हैं। चाहे प्यार-मोहब्बत से या गुस्सा दिखाकर, मार-पीटकर या मार खाकर, जैसे भी हो और जिस रास्ते से भी हो बुराईयों को फैलने से रोकने में लग जाते हैं। इमाम ने कहा कि ऐसा करने वाला हर आदमी ज़िन्दा आदमी है। कुछ दूसरे लोग जब बुराईयों को देखते हैं तो उनके दिल में भी एक आग सी लगती है और फिर उनका यह ग़ुस्सा उनकी ज़बान तक आ जाता है यानी बुराईयाँ फैलाने वालों को कभी प्यार से और कभी चीख़-चिल्लाकर समझाते-बुझाते हैं लेकिन जब कुछ करके दिखाने का वक़्त आता है तो पीछे हट जाते हैं। इमाम ने कहा कि यह वह लोग हैं जिनके अंदर ज़िन्दगी की दो निशानियाँ तो होती हैं मगर एक निशानी इनके अंदर भी नहीं होती। इसके बाद इमाम ने कहा कि एक तीसरी तरह के लोग भी होते हैं और उनके दिल में बुराईयों के ख़िलाफ़ आग लगी होती है लेकिन उनके दिल में लगी हुई यह आग बस उनके दिल के अंदर ही

---

[1] विरूध

अंदर रह जाती है और इस आग का असर दिल से बाहर नहीं आ पाता। ऐसे आदमी के दिल में ग़ुस्सा तो होता है मगर वह न किसी से कुछ कहता है और न किसी को कुछ समझाता है।

अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर की पहली शर्त बसीरत (समझदारी) है

इस इस्लामी हुक्म ''अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर'' की दो बुनियादी शर्तें हैं जिनमें से पहली बसीरत यानी समझदारी और हालात की सही पहचान है।

अभी तक हम अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर का मतलब बस इतना सा ही समझते हैं कि दूसरों को कुछ छोटी-मोटी अच्छी बातें बता दी जाएं और कुछ बुरे कामों से रोक दिया जाए। क्या सच में हम जानते हैं कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर का मतलब क्या है? अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर किसे कहते हैं?

सच्ची बात तो यह है कि हम ठीक से जानते ही नहीं हैं कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर है क्या क्योंकि कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि हम अम्र बिल मारूफ़ की जगह नही अनिल मुन्कर कर देते हैं और कभी नही अनिल मुन्कर की जगह अम्र बिल मारूफ़ कर देते हैं। अगर ऐसा ही होना है तो फिर इस से तो अच्छा है कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर किया ही न जाए। न जाने कितनी बुराईयाँ इसी अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर की वजह से हमारे बीच फैल गई हैं।

इसलिए अगर हम अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करना चाहते हैं तो इस काम के लिए सब से पहले ज़रूरी है कि हम अपने अंदर समझदारी पैदा करें, अपने आसपास के हालात को समझें और अपने आसपास की दुनिया को जानने की कोशिश करें क्योंकि जब तक ऐसा नहीं होगा तब तक हम यह समझ ही नहीं पाएंगे कि हमें कहाँ अम्र बिल मारूफ़ करना है यानी कैसे अच्छाईयों को फैलाना है और कहाँ नही अनिल मुन्कर करना है यानी बुराईयों को फैलने से रोकना है। सब से पहले ''मारूफ़'' यानी अच्छाईयों और अच्छे कामों को समझना बहुत ज़रूरी है। साथ ही साथ ''मुन्कर'' यानी बुराईयों को जानना भी बहुत ज़रूरी है क्योंकि जब तक हम बुराईयों को नहीं समझेंगे तब तक बुराईयों की जड़ तक नहीं पहुँच सकते।

इसी लिए हमारे इमामों ने फ़रमाया हैः

> जब कोई जाहिल अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करना चाहता है तो अच्छे के बजाए उससे बुरा हो जाता है।[1]

अगर कोई इस हदीस के नमूने ढूँढना चाहे तो उसे हज़ारों मिल जाएंगे।

अब हो सकता है कि कोई कहे कि हम तो जाहिल हैं इसलिए अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करना हमारे ऊपर वाजिब ही नहीं है तो इस बात का जवाब पहले ही दे दिया गया है ताकि अगर किसी के दिल में यह सवाल उठे तो फ़ौरन उसे जवाब मिल जाए।

इस बारे में क़ुरआन फ़रमाता हैः

> जो हलाक हो (मरे) वह दलील के साथ हलाक हो और जो ज़िन्दा रहे वह भी दलील के साथ

---

[1] उसूले काफ़ी, 1/44

> ज़िन्दा रहे और अल्लाह सब की सुनने वाला और सब का हाल जानने वाला है।[1]

मासूम से पूछा गया कि जो लोग जाहिल होते हैं उनके साथ क़यामत में क्या होगा? फ़रमाया कि क़यामत में ऐसे आलिम को लाया जाएगा जो बे-अमल होगा और उससे पूछा जाएगा कि तुम ने अमल क्यों नहीं किया? उसके पास इस सवाल का कोई जवाब नहीं होगा और फिर उसे सज़ा मिलेगी। इसके बाद एक दूसरे आदमी को लाया जाएगा और उससे भी पूछा जाएगा कि तुम ने क्यों अमल नहीं किया? वह जवाब देगा कि मैं जानता ही नहीं था, समझता ही नहीं था। जैसे ही वह यह जवाब देगा तो उससे कहा जाएगा कि फिर तुम ने सीखा क्यों नहीं? भला यह भी कोई जवाब हुआ कि मैं जानता नहीं था? क्या अल्लाह ने तुम्हें समझ नहीं दी थी? समझ तो इसी काम के लिए दी गई थी कि इसे इस्तेमाल करके अपने अंदर समझदारी पैदा करो, चीज़ों को समझो, रिसर्च करो, ध्यान दो और ग़ौर करो। तुम्हें तो उन लोगों में से होना चाहिए था जो सिर्फ़ अपने ज़माने को ही नहीं बल्कि आगे आने वाले ज़माने और हालात को भी समझते हैं।

हज़रत अली[अ०] फ़रमाते हैंः समाज के लोग नासमझ हो गए हैं। जब तक उन पर कोई मुसीबत न आ जाए तब तक उस मुसीबत के बारे में कुछ जानते ही नहीं हैं, अपने हाथ-पैर ही नहीं हिलाते, कुछ करने के लिए उठते ही नहीं, जबकि होना तो यह चाहिए था कि मुसीबतों के आने से पहले ही उन्हें रोकने का रास्ता ढूँढा जाता। लोगों को तो ऐसा होना चाहिए कि अपने ज़माने के साथ-साथ आगे आने वाले ज़माने को भी समझ रहे हों

---

[1] सूरए अन्फ़ाल/42

ताकि जो मुसीबतें व दिक़्क़तें पचास साल बाद आने वाली हैं उनकी अभी से रोकथाम की जा सके।[1]

इमाम हुसैन[अ0] की गहरी नज़र

हुसैनी क्रांति को आसमान की ऊँचाईयों पर ले जाने वाला एक फ़ैक्टर इमाम हुसैन[अ0] की गहरी नज़र भी है यानी इमाम हुसैन[अ0] उन चीज़ों को देख और समझ रहे थे जिनका दूसरे लोगों को सिरे से पता ही नहीं था। दूसरे उन बातों का एहसास ही नहीं कर पा रहे थे। आज हम उस वक़्त के हालात और उस वक़्त की बातों का अच्छी तरह से समझते हैं लेकिन जो लोग उस ज़माने में जी रहे थे वह हालात को इमाम हुसैन[अ0] की तरह से नहीं देख और समझ पा रहे थे।

उस दौर में आज की तरह मीडिया नहीं था। अगर किसी जगह कुछ हो जाता था तो दूसरे शहर वालों को महीनों-महीनों ख़बर नहीं होती थी। शाम (सीरिया) में होने वाली बातों का मक्के-मदीने वालों को बहुत देर से पता चल पाता था बल्कि कभी-कभी तो उन्हें कुछ पता ही नहीं चल पाता था। इसका सब से अच्छा नमूना ख़ुद मदीने वालों की कहानी हैः इमाम हुसैन[अ0] ने मदीने से ही अपना मिशन शुरू कर दिया था क्योंकि इमाम से बैअत मदीने में ही मांगी गई थी जिसे इमाम ने ठुकरा दिया था। उसके बाद मदीने से मक्का और मक्के से करबला का सफ़र है जहाँ इमाम हुसैन[अ0] को शहीद कर दिया गया था। जानने की बात यह है कि जब मदीने वालों को इमाम हुसैन[अ0] की शहादत की ख़बर मिली थी तो वह चौंक गए थे कि अरे! यह क्या हो गया? तब जाकर उनकी आँख खुली थी और एक-दूसरे से पूछ रहे

---

[1] नहजुल बलाग़ा, ख़ुतबा/22

थे कि इमाम हुसैन[अ०] को क्यों शहीद किया गया है? हालात को समझने के लिए फ़ौरन सात-आठ लोगों की एक कमेटी बनाई गई थी जिसे शाम भेज दिया गया था। उस कमेटी का काम यह था कि वह शाम जाए और वहाँ से हालात का सही पता लगाकर आए। वह लोग शाम गए और जब वहाँ से वापस आए तो मदीने वालों ने पूछा कि बताओ! शाम से क्या ख़बर लाए हो? शाम से वापस आने वालों ने कहा कि बस कुछ न पूछो तो अच्छा है। जब तक हम शाम में रहे हमें बस यही डर लगा रहा था कि कहीं ऐसा न हो कि आसमान से पत्थरों की बारिश न होने लगे जिससे हम भी तहस-नहस हो जाएं। पूछने वालों ने पूछा कि आख़िर बात क्या है? शाम में ऐसा क्या हो रहा है? आने वालों ने कहा कि बस इतना जान लो कि हम लोग एक ऐसे आदमी के पास से आ रहे हैं जो खुले-आम शराब पीता है, कुत्तों के साथ खेलता है, बन्दरों से अपना दिल बहलाता है और ऐसा कोई गुनाह नहीं है जो वह न करता हो। यहाँ तक कि उन लोगों ने अपनी बोली में यह भी कहा कि वह तो इतना बुरा आदमी है कि अपनी माँ-बहनों के साथ भी मुँह काला करता है।

अब जाकर मदीने वालों की समझ में आ रहा था कि इमाम हुसैन[अ०] ठीक कहते थे और वह पहले ही दिन से इन सारी बातों को समझ रहे थे।

इमाम हुसैन[अ०] ने आशूरा के दिन भी इस बात का एलान कर दिया था कि यह लोग मुझे मार तो देंगे मगर मेरी शहादत के बाद यह हुकूमत इनके हाथ से निकल जाएगी और ऐसा ही हुआ कि अबू सुफ़यान के घराने वाले मिट गए और बड़ी ही जल्दी हुकूमत उनके हाथ से निकल गई। इतना ही नहीं बल्कि बनी उमय्या की हुकूमत भी बहुत ज़्यादा नहीं टिक सकी क्योंकि अब्बासी

हुकूमत तो बनी ही थी इमाम हुसैन[अ०] के ख़ून का बदला लेने के नाम पर। बनी अब्बास आए और उन्होंने ख़ूब हुकूमत की। उनकी हुकूमत पाँच सौ साल तक चली थी। करबला के बाद बनी उमय्या की हुकूमत हमेशा डाँवाडोल रही थी। करबला का इससे बड़ा असर और क्या हो सकता है कि ख़ुद बनी उमय्या के अंदर ही आपस में दुश्मन पैदा हो गए थे। इसी बात से पता चलता है कि करबला ने अपना काम कर दिया था और लोगों के दिलों में अपनी जगह बना ली थी।

सब जानते हैं कि इब्ने ज़ियाद कितना नीच और कितना बड़ा ज़ालिम था। उसके एक भाई का नाम उस्मान बिन ज़ियाद था। एक दिन उस्मान ने कहा कि भाई! मेरा दिल चाहता है कि चाहे हमारे ख़ानदान का एक-एक आदमी ग़रीबी, मुसीबत, नीचता, बेइज़्ज़ती वग़ैरा में गले-गले डूबा होता मगर काश! हमारा ख़ानदान तुम्हारे इस काम से बदनाम न हुआ होता। इब्ने ज़ियाद की माँ एक बुरी औरत थी लेकिन उसने भी जब सुना कि उसके बेटे ने ऐसा-ऐसा कर दिया है तो वह इब्ने ज़ियाद से बोली कि बेटा! तूने ऐसा कर तो दिया है लेकिन ध्यान रखना कि अब तुझे जन्नत की ख़ुश्बू भी सूँघने को नहीं मिलेगी।

इसी तरह मरवान बिन हकम के साथ भी हुआ। उसका एक भाई यहया बिन हकम भी था। यहया ने यज़ीद के दरबार में सब के बीच खड़े होकर यज़ीद की तरफ़ देखते हुए कहा थाः सुब्हानल्लाह! सुमय्या की औलाद (यानी ज़ियाद की माँ की औलाद) और सुमय्या की लड़कियों की तो इज़्ज़त हो मगर रसूल[स०] की औलाद को तूने इस हाल में अपने दरबार में बुलाया है?

जी हाँ! हुसैन[अ०] की आवाज़ ख़ुद दुश्मनों के घरों के अंदर से ही उठना शुरू हो गई थी।

इतना ही नहीं बल्कि ख़ुद यज़ीद की बीवी -हिन्द- ने तो यज़ीद के घर के अंदर से ही उसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठा दी थी। उसने जब यज़ीद से सवाल पर सवाल करना शुरू किए तो यज़ीद को उसके सामने अपनी हार मानते हुए मजबूर होकर कहना पड़ा था कि मैं तो हुसैन[अ०] के क़त्ल से राज़ी ही नहीं था। यह सारा काम उबैदिल्लाह बिन ज़ियाद ने अपनी मर्ज़ी से कर दिया है।

बहरहाल इमाम हुसैन[अ०] ने आशूरा के दिन खुला एलान कर दिया था कि मेरे बाद यह हुकूमत चल नहीं पाएगी और यही हुआ कि यज़ीद ने करबला के बाद वह 2 साल भी बड़ी मुसीबत के साथ हुकूमत की और उसके बाद आख़िर में मर गया। जिसके बाद यज़ीद के बेटे मुआविया बिन यज़ीद को हुकूमत मिली। वह भी सब कुछ जानता था इसीलिए हुकूमत में आने के 40 दिन के बाद ही उसने मिम्बर पर जाकर कह दिया कि लोगो! मेरे दादा मुआविया की अली बिन अबी तालिब[अ०] से जंग थी और मैं यह भी जानता हूँ कि अली[अ०] सही थे और मेरे दादा ग़लत। इसी तरह मेरे बाबा यज़ीद ने हुसैन बिन अली[अ०] से जंग की थी और यह भी सच्चाई है कि हुसैन[अ०] सही थे और मेरे बाबा ग़लत। मैं अपने बाबा से अपनी दूरी का एलान करता हूँ। मैं अपने आप को इस हुकूमत के लायक़ नहीं समझता। मुझे डर है कि कहीं मैं भी अपने दादा और बाबा की तरह गुनाहों में न फंस जाऊँ, इसलिए अभी इसी वक़्त हुकूमत छोड़ रहा हूँ और उसके बाद वह हुकूमत छोड़कर अलग हो गया था।

यह थी हुसैन[अ०] की ताक़त, उनके मिशन, उनके इंक़ेलाब और उनकी क्रांति की ताक़त, करबला व आशूरा की ताक़त जो सच्चाई की ताक़त थी और जिसने दोस्त-दुश्मन सब पर अपना असर छोड़ा था।

(4)
अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर
क़िस्में व मरहले[1]

बुराईयों से दूरी

मुसलमान उलमा ने अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के कई दर्जे और कई क़िस्में बताई हैं। अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने के लिए सब से पहले ज़रूरी है कि इन्सान के अंदर बुराईयों से नफ़रत (घृणा) पाई जाती हो यानी उसका दिल बुराई देखकर पीछे हटने लगता हो। इसके बाद उलमा कहते हैं कि नही अनिल मुन्कर यानी दूसरों को बुराईयों से रोकने का पहला दर्जा ''एराज़ और हिज्र'' है यानी जब आदमी किसी दूसरे को कोई ग़लत काम या कोई बुराई करते हुए देखे तो उसे बुराईयों से बचाने और उसकी बुराई से जंग करने के लिए उससे दूर हो जाए और उसके साथ मेल-जोल बढ़ाने या उठने-बैठने के बजाए

---

[1] Kinds and Stages

उसे पूरी तरह से अकेला छोड़ दे। यह अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर का पहला दर्जा है।

इसकी मिसाल यह है कि जैसे हमारी किसी के साथ बहुत अच्छी दोस्ती है और ख़ूब उठना-बैठना है, घर में आना-जाना है, अच्छा मेल-जोल है और बड़ा ही गहरा ही रिश्ता है। अचानक हमें पता चलता है कि हमारा यह इतना गहरा दोस्त किसी बुरे काम में पड़ गया है या कोई ऐसा काम करने लगा है जो गुनाह है। बस यहीं से अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने का पहला दर्जा और पहली स्टेज शुरू हो जाती है। अब हमारा सब से पहला काम यह है कि उसको समझाने और उसे सीधे रास्ते पर वापस लाने के लिए उससे दूरी बना लें यानी जैसे उससे पहले मिलते-जुलते थे अब वैसे नहीं मिलना है (और यह काम ऐसे होना चाहिए कि उसे एहसास हो जाए कि हम ने उससे मिलना-जुलना क्यों कम कर दिया है)। ऐसा करना अपने आप में ख़ुद एक तरह का समझाना ही होता है लेकिन किसी को भी अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करते वक़्त समझदारी से काम लेना बहुत ज़रूरी है। नासमझी के साथ कोई काम नहीं करना चाहिए। बहरहाल ऐसा करना बस तभी ठीक होगा जब हम उस आदमी के साथ मिलना-जुलना बंद कर रहे हों जिसके साथ आपकी दोस्ती गहरी हो यानी ऐसे करने से उसके दिल को चोट लग रही हो और उसकी समझ में आ जाए कि उसने जो कुछ किया है वह अच्छा नहीं किया है। ऐसा बस तभी करना चाहिए जब ऐसा करने से हमारा वह दोस्त उस बुरे काम से दूर हो जाए वरना ऐसे न जाने कितने नमूने हैं जहाँ हमारा बेटा, दोस्त या कोई दूसरा जवान किसी बुरी आदत में पड़ जाता है और हमारा उसके साथ पहले जैसा ही मिलना-जुलना है, बहुत बार ऐसा

भी होता है कि अगर किसी से उसकी किसी बुरी आदत या किसी बुरे काम की वजह से मिलना बंद कर दिया जाए तो वह दिल ही दिल में ख़ुश हो जाता है कि चलो अच्छा हुआ कि जान छूटी क्योंकि इस तरह वह अकेले रहकर आसानी से अपना वह काम कर सकता है जिसकी वजह से हम ने उससे मिलना बंद किया था। यहाँ अगर मिलना बंद कर दिया गया तो दूसरों से दूर होने या अकेले होने का डर तो बहुत दूर की बात है, उसके तो वारे-नियारे हो जाएंगे। ऐसे हालात में यह काम ठीक नहीं होगा। जब उलमा कहते हैं कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर का एक दर्जा मिलना-जुलना बंद कर देना है तो इसका मतलब यह है कि ऐसा तब करना चाहिए जब हमारे इस काम से कुछ असर होने वाला हो और सामने वाला बात को समझकर अपनी वह बुराई छोड़ दे।

वैसे मिलना-जुलना छोड़ना या उठना-बैठना रोक देना एक दूसरी तरह का भी होता है जो अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर की कैटेगरी में नहीं आता है जैसे हमारी फ़ैमिली का किसी फ़ैमिली वालों के साथ मिलना-जुलना है। एक दिन हमें पता चतला है कि वह फ़ैमिली बिगड़ गई है और घर वाले तरह-तरह की बुराईयों में पड़ गए हैं। अब हम अपने आप को और अपने घर वालों को बचाने के लिए उस फ़ैमिली से दूर हो जाते हैं ताकि उन लोगों की बुरी आदतें हमारे घर वालों तक न पहुँच जाएं क्योंकि किसी बीमार के साथ उठना-बैठना बीमारी को गले लगाने जैसा ही होता है यानी बुराईयाँ धीरे- धीरे और चुपके-चुपके एक आदमी से दूसरे आदमी के अंदर उतर जाती हैं जिसका आदमी को एहसास भी नहीं होता।

इसलिए जहाँ हमें पता हो कि अगर हम उस आदमी के साथ रहेंगे तो बुराई पर उसकी हिम्मत बढ़ जाएगी और हम ने उसका साथ छोड़ दिया तो उसे दिली तकलीफ़ होगी जिसके बाद वह अपनी बुराई को भी छोड़ सकता है तो ऐसी हालत में रिश्ता तोड़ना और मेल-जोल बंद कर देना वाजिब है। यह अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर का पहला दर्जा है।

ज़बान का नम्बर

उलमा ने अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर का दूसरा दर्जा ज़बान को बताया है यानी ज़बान से समझाना, बताना, नसीहत करना और सही रास्ता दिखाना। कई बार ऐसा होता है कि आदमी कोई बुराई या गुनाह कर रहा होता है और वह ऐसा अपनी नासमझी या जिहालत की वजह से कर रहा होता है। किसी ग़लत प्रोपेगण्डे की चपेट में आकर ऐसा करने लगता है। ऐसे आदमी को कोई समझाने वाला और रास्ता दिखाने वाला चाहिए। कोई ऐसा आदमी चाहिए जो उसके पास जाकर उससे बात करे और प्यार-मोहब्बत व हमदर्दी के साथ उसे समझाए। जो काम वह कर रहा है उसकी बुराई और ख़राबियाँ उसे बताए ताकि वह अच्छे-बुरे को समझकर सही रास्ते पर वापस आ जाए। यह अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर का अगला दर्जा है। इसलिए अगर हम किसी ऐसे आदमी को देखें जो किसी बुराई में फंस गया हो और हम उसे समझा-बुझाकर सही रास्ते पर वापस ला सकते हों तो हमारे ऊपर वाजिब है कि उस आदमी के पास जाएं और अच्छे ढंग से उसे समझाएं ताकि वह अपनी बुराई से दूर हो जाए।

अम्र व नही करने की बारी

यह अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर का तीसरा दर्जा है। कभी ऐसा भी होता है कि सामने वाला के इस हाल में होता है कि उस पर उससे मिलना-जुलना छोड़ने का कोई असर नहीं होता और न हम उसे समझा-बुझाकर उसको बुराई से रोक सकते हैं। ऐसे हालात में हमें एक क़दम और आगे बढ़ना होगा यानी ज़बान से समझाने के बजाए अमल के मैदान में उतरना होगा। अमल के मैदान में उतरना कई तरह से हो सकता है। अमल के मैदान में उतरने का मतलब बस यह नहीं है कि आदमी सामने वाले को मारने-पीटने लगे, उसे चोट पहुँचाने लगे या सज़ा देने लगे। हमारे कहने का मतलब यह भी बिल्कुल नहीं है कि कहीं ऐसा किया ही न जाए। ऐसे भी कुछ जगहें हैं जहाँ यह भी करना पड़ता है लेकिन इस्लाम ऐसा दीन है जो बैलेंस का बड़ा ध्यान रखता है और कभी भी हद से आगे नहीं बढ़ता। इस्लाम सज़ा या सख़्ती को भी मानता है मगर साथ ही साथ यह भी मानता है कि जुर्म[1] या गुनाह करने वाले को सही रास्ते पर लाने के कई दर्जे हैं जिनमें से एक यह भी है कि अगर सामने वाला सख़्ती का रास्ता अपनाए बिना अपनी बुराई को छोड़ने पर तैयार नहीं होता है तो सख़्ती की जाना चाहिए लेकिन यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हर जगह और हर हाल में सख़्ती नहीं की जा सकती या सज़ा नहीं दी जा सकती।

हज़रत अली[अ०] अल्लाह के रसूल[स०] के बारे में यूँ फ़रमाते हैंः

---

[1] अपराध

> रसूले इस्लाम[स०] एक ऐसे तबीब (डाक्टर) थे जो अपनी तबाबत (डाक्टरी) के साथ चक्कर लगा रहा हो, जिसने अपना मरहम तैयार कर लिया हो और दाग़ने के औज़ारों को तपा लिया हो ताकि जिस अंधे दिल, बहरे कान और गूँगी ज़बान को ज़रूरत पड़े फ़ौरन उसका इलाज कर दे।[1]

यानी रसूले इस्लाम[स०] दो काम करते थेः लोगों की चोटों पर मरहम भी रखते थे और दग़े हुए औज़ारों से चोटों को ठीक भी करते थे।

हज़रत अली[अ०] के कहने का मतलब यह है कि अल्लाह के रसूल[स०] लोगों को दो तरह से समझाते थे। पहले मोहब्बत व हमदर्दी से और इसी लिए हज़रत अली[अ०] ने इस हदीस में पहले मरहम की बात कही है। रसूले इस्लाम[स०] पहले हमेशा प्यार-मोहब्बत और हमदर्दी से इलाज करते थे यानी समझाते थे और लोगों को बुराईयों व गुनाहों से रोकते थे लेकिन अगर बात इस हद तक पहुँच जाती थी कि मोहब्बत व हमदर्दी का भी असर नहीं होता था तो रसूले इस्लाम[स०] लोगों को उनके हाल पर नहीं छोड़ दिया करते थे बल्कि इसके बाद सर्जरी और काट-पीट का नम्बर आता था यानी फिर सख़्ती से काम लेते थे। जब रसूले इस्लाम[स०] मरहम लगाने वाला काम करते थे तो मरहम भी बड़ा अच्छा चुनते थे और जब मरहम काम नहीं करता था तो सर्जरी भी बड़ी मज़बूती के साथ करते थे यानी अगर सख़्ती करने या सज़ा देने का वक़्त आता था तो सज़ा भी भरपूर दिया करते थे।

---

[1] नहजुल बलाग़ा, ख़ुतबा/107

लफ़्ज़ी और अमली अम्र बिल मारूफ़

यहाँ तक जितनी बात हुई है वह नही अनिल मुनकर यानी बुराईयों से रोकने के बारे में थी। अब सवाल यह है कि अम्र बिल मारूफ़ यानी दूसरों के अंदर अच्छाईयों और अच्छे कामों का शौक़ उभारने के लिए हमें क्या करना चाहिए? यह काम कैसे किया जाएगा?

अम्र बिल मारूफ़ भी बिल्कुल नही अनिल मुन्कर की तरह ही किया जाएगा। बस फ़र्क़ इतना सा है कि अम्र बिल मारूफ़ या *लफ़्ज़ी* है या *अमली*। *लफ़्ज़ी अम्र बिल मारूफ़* यह है कि सही बात लोगों को बताई जाए, उन्हें अच्छाईयों के बारे में बताया जाए, उनके अंदर अच्छे काम करने का शौक़ उभारा जाए और उन्हें समझाया जाए कि अच्छा काम किसे कहते हैं।

अमली अम्र बिल मारूफ़ यह है कि आदमी बस कहकर और बताकर ही एक किनारे न बैठ जाए क्योंकि कभी-कभी सिर्फ़ कहना कारगर नहीं होता है। हमारे समाज की एक बीमारी यह भी है कि हम बोलने और बताने पर बड़ा ध्यान देते हैं। हम ने माना कि बोलना भी अच्छी चीज़ है और जब तक बोला और बताया नहीं जाएगा तब तक काम आगे बढ़ ही नहीं सकता मगर हमारी बीमारी यह है कि हम चाहते हैं कि सब कुछ कहकर और बताकर ठीक कर दिया जाए। जबकि ऐसा कभी नहीं हो सकता कि सब कुछ कहकर और बताकर ठीक कर दिया जाए। कहना और बताना ज़रूरी है मगर यही सब कुछ नहीं है बल्कि करके दिखाना भी बहुत ज़रूरी है और यही *अमली अम्र बिल मारूफ़* है यानी कहने के बजाए करके दिखाया जाए कि अच्छाई और अच्छा काम क्या है।

ख़ुद *लफ़्ज़ी अम्र बिल मारूफ़* और *अमली अम्र बिल मारूफ़* को भी दो तरह से किया जा सकता हैः सीधे–सीधे या घुमाकर (डायरेक्टली या इंडायरेक्टली)।

कभी ऐसा होता है कि जब हमें अम्र बिल मारूफ़ या नही अनिल मुन्कर करना होता है तो हम अपनी बात बिल्कुल सीधे–सीधे कह देते हैं जैसे अगर हमें किसी से कोई काम कराना हो तो साफ़–साफ़ कह देते हैं कि यह काम कर लीजिए लेकिन कभी ऐसा भी होता है कि हम सामने वाले से अपनी बात सीधे–सीधे नहीं कहना चाहते बल्कि किसी और रास्ते से समझाना चाहते हैं ताकि हमारी बात का ज़्यादा असर हो यानी बात कुछ इस तरह से कही जाती है कि सामने वाला समझता भी नहीं कि उसके बारे में बात हो रही है और बात की गहराई तक भी पहुँच जाता है जैसे अगर हमें किसी को कोई बात समझाना हो तो हम किसी दूसरे आदमी के बारे में कहते हैं कि उसने यह काम किया था और फिर उस काम की और उस आदमी की तारीफ़ भी करते हैं और कुछ इस तरह से सारी बात उसके सामने रखते हैं कि वह आसानी से मामले की तह तक पहुँच जाता है और पूरी तरह से बात को समझ जाता है। यह तरीक़ा ज़्यादा कारगर होता है।

इसी तरह अगर *अमली अम्र बिल मारूफ़* भी सीधे–सीधे न करके दूसरे तरीक़े से किया जाए तो यह भी बड़ा कारगर होता है। अब आइए! इसका एक नमूना देखते है।

इमाम हसन[अ०] और इमाम हुसैन[अ०] अभी छोटे ही थे। एक दिन दोनों ने एक ऐसे बूढ़े आदमी को देखा जो ग़लत तरीक़े से वुज़ू कर रहा था। दोनों ही बच्चे इस्लामी कल्चर और इस्लामी आचार–सदाचार को अच्छी तरह से जानते थे। फ़ौरन समझ गए कि एक तरफ़ तो

इस बूढ़े आदमी को बताना भी ज़रूरी है कि इसका वुज़ू ग़लत है और दूसरी तरफ़ अगर सीधे-सीधे उससे कह देते हैं कि आपका वुज़ू ग़लत है तो उसके दिल को ठेस पहुँचेगी। इसलिए उसका सब से पहला रिएक्शन यह होगा कि वह फ़ौरन कहेगा कि नहीं! मेरा वुज़ू बिल्कुल ठीक है और वुज़ू ऐसे ही किया जाता है। उसे जितना भी समझाया जाएगा वह मानेगा ही नहीं क्योंकि वह बूढ़ा है और यह दोनों अभी बच्चे ही हैं। इसलिए दोनों बच्चे आगे बढ़े और उसके पास जाकर बोले कि हम दोनों आपके सामने वुज़ू करना चाहते हैं। आप देखकर यह बताइए कि हम में से किसका वुज़ू सही है। आमतौर पर बड़े लोग बच्चों की इस तरह की बातों को मान लेते हैं। उसने कहा कि ठीक है। आप दोनों वुज़ू कीजिए! मैं देख रहा हूँ। पहले इमाम हसन[अ०] ने वुज़ू किया और फिर इमाम हुसैन[अ०] ने। दोनों ने बिल्कुल वैसे वुज़ू किया जैसा किया जाना चाहिए। जैसे ही उस बूढ़े आदमी ने इन दोनों बच्चों को वुज़ू करते हुए देखा तो फ़ौरन समझ गया कि ख़ुद उसी का वुज़ू ग़लत था। फिर बोला कि आप दोनों का वुज़ू सही है। मेरा ही ग़लत था।

किसी की ग़ल्ती को सुधारने का यह भी एक अच्छा तरीक़ा है क्योंकि अगर दोनों बच्चे सीधे-सीधे उससे कह देते कि आपकी इतनी उम्र हो चुकी है और अभी तक आपको वुज़ू करना नहीं आता तो इतना सुनकर वुज़ू तो दूर की बात है वह नमाज़ से ही दूर हो जाता।

ग़लत तरीक़े से अम्र बिल मारूफ़ करना

एक आलिम ने एक बार बताया था कि मशहद में एक आदमी रहा करता था जिसका दीन से कोई लेना-देना नहीं था। इतना ही नहीं कि नमाज़-रोज़ा नहीं

करता था बल्कि वह सिरे से इस्लाम को मानता ही नहीं था। बहुत दिनों तक हम उसे समझाते रहे और प्यार–मोहब्बत व हमदर्दी के साथ उससे बात करते रहे जिसका असर यह हुआ कि वह धीरे–धीरे दीन की तरफ़ आ गया और सच्चा मोमिन हो गया। अब उसने अपने आप को पूरी तरह से बदल लिया था। नमाज़ भी पढ़ने लगा था, रोज़े भी रखने लगा था और बात यहाँ तक पहुँच गई थी कि नमाज़ भी वह जमाअत के साथ पढ़ने लगा था जबकि वह मशहद में एक सरकारी आफ़िसर था और उसकी पोस्ट भी बड़ी ऊँची थी। वह इमाम अली रज़ा[अ०] के रौज़े में गौहर शाद मस्जिद में आयतुल्लाह नहावन्दी के पीछे नमाज़ पढ़ता था। फिर ऐसा हुआ कि वह आदमी बहुत दिनों तक कहीं दिखा ही नहीं। मैं समझा कि शायद कहीं बाहर चला गया है लेकिन दूसरे लोगों ने बताया कि वह यहीं है मगर अब यहाँ नहीं आता है। बाद में पता चला कि वह अब नमाज़े जमाअत में भी नहीं आता है। अब ज़ाहिर है कि हम लोग अचम्भे में पड़ गए थे कि यह अचानक उसे क्या हो गया है कि कहाँ तो उसका यह हाल था कि इतना दीनदार हो गया था और अब यह हाल है कि सिरे से दीन को ही भूल गया है। बहरहाल किसी तरह उस तक पहुँच ही गए। पता चला कि वह आदमी मस्जिद में चौथी–पाँचवी लाइन में खड़े होकर नमाज़े जमाअत पढ़ता था। मस्जिदों में आमतौर पर ऐसे लोग भी आते हैं जो ख़ुद को सब से बड़ा मोमिन समझते हैं और यह लोग यह भी समझते हैं कि अल्लाह के ऊपर इनका कर्ज़ा भी बाक़ी है। एक दिन उन्हीं में से एक आदमी पहली लाइन से उठकर उसके सामने आकर बैठ गया और बोला कि भाई! मुझे तुम से एक सवाल करना है। उसने कहा कि हाँ! बताइए क्या बात है? उसने पूछा

कि क्या तुम मुसलमान हो? वह बेचारा बौखला गया कि भला इस सवाल का क्या जवाब दे। बोला कि यह आप मुझ से कैसा सवाल कर रहे हैं? उसने कहा कि नहीं! महरबानी करके मुझे बताओ कि मुसलमान हो कि नहीं? उसने कहा कि हाँ! मैं मुसलमान हूँ और अगर मुसलमान न होता तो मस्जिद में आता ही क्यों? और यहाँ इस मस्जिद में, वह भी नमाज़े जमाअत में भला मेरा क्या काम था? इसके बाद उस आदमी ने कहा कि भाई! अगर तुम मुसलमान हो तो फिर तुम्हारी दाढ़ी कहाँ ग़ायब है? इतना सुनना था कि वह आदमी यह कहता हुआ वहाँ से उठ गया कि लीजिए! यह मस्जिद, यह नमाज़े जमाअत और यह दीन, सब कुछ अपने पास ही रखिए। वह आदमी फिर ऐसा गया कि पलट कर ही नहीं आया।

यह भी नही अनिल मुन्कर करने का एक तरीक़ा है जिससे आदमी बुराई से दूर होने के बजाए ख़ुद दीन से ही दूर हो जाता है और इस्लाम को ही बुरा-भला कहने लगता है। अगर कोई इस तरह से अम्र बिल मारूफ़ या नही अनिल मुन्कर करता है तो उसे पता होना चाहिए कि उसका यह काम लोगों को इस्लाम का दुश्मन बनाने की सब से अच्छी मशीन है।

बहुत दिनों पहले मैंने एक मैग्ज़ीन में किसी दूसरे मुल्क की एक कहानी पढ़ी थी। लिखा था कि वहाँ एक लड़की बहुत दीनदार[1] थी। उस मुल्क का राजकुमार उस लड़की से बड़ी मोहब्बत करता था लेकिन वह उस लड़की के उलट बड़ा बुरा और रंग-रलियों में डूबा हुआ आदमी था। वह उस लड़की को अपने फंदे में फंसाना चाहता था लेकिन वह लड़की अपने दीनदार होने की

---

[1] धार्मिक

वजह से किसी भी तरह उसकी चालों में नहीं आ रही थी। उसने अपनी सारी कोशिशें कर डाली थीं लेकिन वह लड़की टस से मस नहीं हो रही थी। अब वह बिल्कुल मायूस सा हो गया था। दिन इसी तरह बीतते रहे। अचानक एक दिन उस लड़की की तरफ़ से कोई आदमी एक मैसेज लेकर आया जिसमें उस लड़की ने उसके साथ रहने पर अपनी रज़ामंदी जताई थी। राजकुमार को बड़ा अचम्भा हुआ। बहरहाल वह उसके पास गया और जब वहाँ गया तो उसने देखा कि सच में वह तैयार है। उसने खोज-बीन की कि यह इस लड़की को क्या हो गया क्योंकि वह तो बड़ी दीनदार थी। अचानक इतनी कैसी बदल गई और दीन से क्यों दूर हो गई? असल में बात यह हुई कि जब चर्च के एक फ़ॉदर को पता चला कि वह लड़की इतनी दीनदार है तो उसने अपनी सोच में उसे और दीनदार बनाना चाहा। एक दिन उसने उस लड़की से मिलने के लिए वक़्त मांगा और तय वक़्त पर उससे मिलने पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर उसने उस लड़की से कहा कि मैं तुम्हारे लिए एक गिफ़्ट लाया हूँ। उसके हाथ में एक बर्तन था जो एक कपड़े से ढका हुआ था। उसने वह गिफ़्ट उसके आगे करके कपड़ा हटा दिया। जैसे ही उस लड़की ने झांक कर देखा तो देखते ही पीछे हट गई क्योंकि उस बर्तन में किसी मुर्दा आदमी के बदन का कोई टुकड़ा था जो वह किसी क़ब्रिस्तान से लाया था। लड़की ने पूछा कि यह क्या है? उसने जवाब दिया कि यह मैं इसलिए लाया हूँ ताकि तुम इसके बारे में सोचो-समझो और इस पर ध्यान दो। इस से तुम्हें यह फ़ाएदा होगा कि तुम समझ जाओगी कि यह दुनिया कितनी धोखेबाज़ है और कितनी जल्दी आदमी को भुला देती है। उस फ़ॉदर ने यह काम इसलिए किया था ताकि उस लड़की के दिल से दुनिया की मोहब्बत उठ

जाए लेकिन वहाँ सारा मामला ही उल्टा हो गया था क्योंकि यह सब कुछ देखकर उस लड़की के दिल पर बड़ा उल्टा असर पड़ा था। उसने कहा कि अगर ऐसा है तो फिर मैं इसके बिल्कुल उलट ज़िन्दगी जियूँगी क्योंकि जब यही दुनिया है तो फिर इस चार दिन की ज़िन्दगी को ऐसे क्यों बिताया जाए? गिनती के इन चार दिनों में मौज-मस्ती न की जाए? यह चार दिन तो चुटकी में बीत जाएंगे।

यह भी किसी को समझाने और नसीहत करने का ही एक तरीक़ा है लेकिन कितना ग़लत है! सच मानिए! हमारे बीच भी जो इतना सारा अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर किया जाता है उसमें भी कई बार इसी तरह का अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर होता है जो आदमी को दीन से दूर कर देता है।

मेरे साथ भी ऐसा ही हो चुका है। जब मैं क़ुम शहर में रहता था तभी ईरान में नई-नई बस सर्विस शुरू हुई थी। हम लोग एक दिन मशहद जाने के लिए एक बस में सवार हो गए। कुछ देर के बाद मुझे लगा कि बस के ड्राइवर को मुझ से कुछ चिढ़ सी हो रही है क्योंकि अकेले मैं ही अमामा लगाए हुआ था। न मैं उसे जानता था और न वह मुझे पहचानता था। रास्ते में एक जगह बस रूकी तो मैंने आगे बढ़कर उससे पूछा कि यहाँ बस कितनी देर रूकेगी? उसने मुझे इस तरह से झिड़कना चाहा कि दोबारा मशहद तक के रास्ते में मैं उससे कुछ पूछने की हिम्मत ही न करूँ। मैंने दिल ही दिल में अपने आप को समझा लिया कि कुछ न कुछ होगा जिसकी वजह से यह ऐसा कर रहा है। मैंने सोचा कि कम से कम यह मुसलमान तो नहीं होगा। ज़रूर यहूदी होगी। मुझे भरोसा हो गया था कि ऐसा ही है। मुझे अभी भी याद है कि हमारी बस सिमनान शहर पहुँची तो दोपहर

हो गई थी। हम सब नमाज़ पढ़ने के लिए बस से उतर गए। अभी मैं वुज़ू कर ही रहा था कि देखा कि वह ड्राइवर अपने पैर धो रहा है। मैं बराबर उस पर नज़र रखे हुए था। फिर मैंने देखा कि पैर धोने के बाद वह वुज़ू भी करने लगा और फिर उसने नमाज़ भी पढ़ी। मुझे बड़ा अचम्भा हुआ कि यह तो मुसलमान है और नमाज़ भी पढ़ रहा है जबकि मैं उसे यहूदी समझ रहा था। बहरहाल अभी तक मेरे साथ वह वैसे ही था जैसे पहले था यानी उखड़ा हुआ और ग़ुस्से से भरा हुआ। फिर रात हो गई। मेरे पीछे दो स्टूडेंट बैठे हुए थे। वह भी गर्मियों की छुट्टियाँ बिताने मशहद जा रहे थे। वह ड्राइवर जितना मेरे साथ उखड़ा-उखड़ा हुआ था उतना ही उन दोनों के साथ हमदर्दी कर रहा था। आमतौर से रात में मुसाफ़िर सो जाते हैं लेकिन उसने उन दोनों में से एक से कहा कि आओ! यहाँ मेरे पास आ जाओ। बातें करते हुए चलेंगे ताकि मुझे नींद न आए। वह लड़का जाकर उसके पास बैठ गया। सब लोग सो चुके थे। अचानक मैंने सुना कि वह उस लड़के को अपनी कहानी सुना रहा था। मैं भी ध्यान से सुनने लगा कि देखूँ तो इसके साथ क्या हुआ है। पहले उसने मशहद वालों के बारे में बताया कि जो लोग मौलानाओं के साथ उठते-बैठते हैं उनसे मुझे बड़ी चिढ़ होती है। मुझे बस वह लोग अच्छे लगते हैं जो मौलानाओं से दूर रहते हैं। दूसरी बात यह सुन लो कि मेरे पूरे घराने में बस अकेला मैं ही ड्राइवर हूँ। दूसरे सब या तो डॉक्टर हैं या इंजीनियर, या कारोबारी हैं या आफ़िसर। बस मेरी ही क़िस्मत ऐसी निकल गई है। उस लड़के ने पूछा कि ऐसा क्या हो गया था? उसने जवाब दिया कि ना पूछो! पूरी एक कहानी है। मेरा बाप एक बड़ा दीनदार आदमी था। मैं उस वक़्त बच्चा ही था। स्कूल जाने का वक़्त आया

तो मेरे बाप ने स्कूल में मेरा एड्मिशन करा दिया था। महल्ले की मस्जिद के इमाम को पता चला तो वह मेरे घर आकर बोले कि सुना है कि आपने अपने बच्चे का एड्मिशन स्कूल में करा दिया है? उन्होंने कहा कि हाँ! आपने ठीक सुना है। इतना सुनना था कि वह बोले कि अफ़सोस! क्या आप यह बात नहीं जानते हैं कि अगर आपका बच्चा स्कूल चला गया तो दीन से दूर हो जाएगा? मेरे बाप भी सीधे-साधे आदमी थे, उन्होंने उनकी बातों पर भरोसा कर लिया। मेरा क्या, मैं तो बच्चा ही था। उसके बाद मेरे बाप ने मुझे स्कूल जाने से रोक दिया और मुझे दूसरे कामों में लगा दिया। जब बड़ा हुआ और बाल-बच्चे वाला हुआ तो पता चला कि मुझे तो लिखना पढ़ना भी नहीं आता है।

अब मैं सारी बात समझ गया था कि यह आदमी है तो मुसलमान मगर अपनी मुसीबतों की जड़ यह मुझ जैसे लोगों को समझ रहा है। उसका कहना यही था कि यह मौलाना लोग ही मेरी सारी मुसीबतों की जड़ हैं।

यह भी नही अनिल मुन्कर करने का एक तरीक़ा है लेकिन कितना दुख पहुँचाने वाला और ख़तरनाक है जिससे लोगों की ज़िन्दगियाँ बर्बाद हो जाती हैं। साथ ही वह दीन और दीन वालों से भी दूर हो जाते हैं। फिर मैंने अपने दिल में सोचा कि चलो अच्छा है। यह मौलानाओं से ही दुश्मनी रखता है, कम से कम इस्लाम का दुश्मन तो नहीं है। इसके साथ इतना सब कुछ हो गया है मगर फिर भी नमाज़ पढ़ रहा है, रोज़े रख रहा है और इमाम अली रज़ा[अ०] की ज़ियारत के लिए भी जा रहा है।

यह नही अनिल मुन्कर करने यानी बुराई से रोकने का वह तरीक़ा है जिससे इस्लाम को बस घाटा ही घाटा होता है।

ऐसी ही एक कहानी और पढ़ लीजिए! एक मदरसे में एक बहुत ही अच्छा तालिबे इल्म (स्टूडेंट) पढ़ता था। वह बड़े खुले दिमाग़ और खुली सोच वाला आदमी था। एक बार वह किसी वजह से कैप लगाकर किसी प्रोग्राम में पहुँच गया। उसके दोस्तों और साथियों ने उसे इस हाल में देखा तो उसका मज़ाक़ उड़ाने लगे। वह बड़े अच्छे मिज़ाज (स्वभाव) वाला था लेकिन उन लोगों ने उसे इतना परेशान किया कि उसने पलटकर उन्हें जवाब दे ही दिया और जवाब भी बड़ा समझदारी भरा व सटीक। उसने उन लोगों से कहा कि दोस्तो! तुम लोग अपने दुश्मनों के दोस्त और अपने दोस्तों के दुश्मन हो। फिर उसने कहा कि मैं तुम लोगों के जैसा ही एक आदमी हूँ और तुम लोगों के बीच में से ही उठा हूँ, मैं तुम्हारी ही तरह सोचता हूँ, तुम्हारी ही तरह अल्लाह के रसूल[स०] और उसकी किताब, क़ुरआन को मानता हूँ, उसके भेजे हुए इमामों को भी मानता हूँ, तुम्हारी ही तरह मैंने भी दीन की किताबें पढ़ी हैं और तुम्हारे ही बीच रहकर मैं भी बड़ा हुआ हूँ। तुम सब लोगों और मेरे बीच में हज़ारों चीज़ें ऐसी होंगी जिनमें हम सब बराबर हैं और जिन्हें हम सब मानते हैं। बहुत से बहुत अगर मैं तुम लोगों की यह बात मान भी लूँ कि मैंने गुनाह किया है (अगर यह काम गुनाह हो तो) और वह यह कि मैं जल्दी ऐसे कपड़े पहनकर आ गया हूँ जो मुझे तुम्हारे हिसाब से नहीं पहनना चाहिए थे लेकिन तुम सब मेरे साथ ऐसा बर्ताव कर रहे हो कि मजबूर होकर मुझे ऐसा लग रहा है कि मुझे अब आगे से तुम लोगों से नहीं मिलना चाहिए। यह बात तो तुम सब जानते ही हो कि आदमी दूसरे लोगों के साथ मिलना-जुलना नहीं छोड़ सकता, इसलिए मुझे समाज में लोगों के साथ तो रहना ही पड़ेगा मगर अब आगे से मैं उन लोगों के साथ

रहने पर मजबूर हो जाऊँगा जो तुम्हारे दुश्मन हैं और ऐसा मुझे इसलिए करना पड़ेगा क्योंकि तुम लोग ख़ुद ही मुझे अपने बीच से भगा रहे हो। इसी लिए मैंने कहा था कि तुम लोग अपने दोस्तों के दुश्मन हो जिसका नमूना मैं हूँ लेकिन इतना ही नहीं बल्कि तुम अपने दुश्मनों के दोस्त भी हो। फिर उसने कहा कि मान लो! एक आदमी अपनी पूरी ज़िन्दगी में अपनी ज़बान पर कभी इस्लाम का नाम तक नहीं लाता है और न ही उसके अंदर इस्लाम की कोई निशानी ही दिखती है, न ही कभी उसने किसी से कहा है कि वह इस्लाम या क़ुरआन को मानता है बल्कि वह तो गुनाह में डूबा हुआ, ज़ालिम, शराबी और जुआरी मशहूर है। यही आदमी जिसका इस्लाम से कोई लेना-देना नहीं है, अचानक एक दिन इमाम अली रज़ा[अ०] की ज़ियारत करने जाता है। अगर इस आदमी को तुम लोग इमाम रज़ा[अ०] के रौज़े में देखोगे तो क्या कहोगे? यही तो कहोगे कि यह मुसलमान है यानी जब उसे रौज़े में देखोगे तो उसकी सारी ख़राबियों को भूल जाओगे। उसकी हज़ार बुराईयों में से 999 बुराईयाँ तुम्हारे इस्लाम और तुम्हारे दीन से टकराती हैं लेकिन तुम उन सारी बुराईयों को भुला देते हो क्योंकि तुम्हें उस बुरे आदमी से इस से बढ़कर कोई उम्मीद है भी नहीं। जैसे ही वह इमाम रज़ा[अ०] की ज़ियारत करने के लिए आता है तो कह बैठते हो तो कि बेशक! यह मुसलमान है। उधर जिस आदमी के अंदर हज़ार में 999 आदतें मुसलमानों वाली हैं उसे अपने हिसाब से बस एक बुराई की वजह से इस्लाम से बाहर निकाल देते हो और मान बैठते हो कि यह मुसलमान नहीं है। इसलिए तुम लोग अपने दुश्मनों के दोस्त हो यानी अपने ही दुश्मनों की मदद कर रहे हो

और अपने दोस्तों के दुश्मन हो यानी सच्चाई यह है कि अपने ही दुश्मन हो।

अच्छे काम और तक़वा ही सब बड़ा अम्र बिल मारूफ़ है

अगर कोई सीधे तौर पर अम्र बिल मारूफ़ नहीं करना चाहता है तो इसका एक अच्छा रास्ता यह है कि वह अपने आप को अच्छा आदमी यानी दीन पर चलने वाला और मुत्तक़ी (तक़वा रखने वाला) बनाए। अगर आदमी दीन के हिसाब से अपने आप को सुधार लेगा तो वह ख़ुद ही चलता- फिरता अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर बन जाएगा। इस दुनिया में लोगों के ऊपर अमल से बढ़कर यानी करके दिखाने से बढ़कर किसी दूसरी चीज़ का असर नहीं होता है। लोग नबियों और इमामों के पीछे-पीछे इसी लिए आसानी से चल पड़ते थे क्योंकि वह लोग पहले करके दिखाते थे और उसके बाद दूसरों से करने के लिए कहते थे लेकिन फ़िलॉस्फ़र्स के पीछे इतना नहीं चलते। ऐसा इसलिए है क्योंकि फ़िलॉस्फ़र्स बस ज़बान से कहते हैं, उनके पास बस थ्योरी होती है, अपने घर के किसी कोने में ही अपनी पूरी ज़िन्दगी बिता देते हैं, बस किताबें लिखा करते हैं और लोगों को थमाते रहते हैं। इसके उलट अल्लाह के भेजे हुए नबी व इमाम बस थ्योरी की बात नहीं करते हैं बल्कि अमल भी करते हैं यानी करके भी दिखाते हैं। जो कुछ कहते हैं पहले ख़ुद उस पर चलकर दिखाते हैं। यहाँ तक कि ऐसा भी नहीं करते कि पहले कहें और बाद में करके दिखाएं बल्कि पहले ख़ुद करके दिखाते हैं और उसके बाद दूसरों से कहते हैं। जब आदमी पहले

ख़ुद कोई काम कर लेता है और उसके बाद दूसरों से कहता है तो उसके कहने का असर कई गुना बढ़ जाता है।

इमाम अली[अ०] ने फ़रमाया हैः

> मैंने जब भी तुम लोगों से कोई काम करने के लिए कहा है तो तुम से कहने से पहले ख़ुद मैंने वह काम किया है (यानी जब तक ख़ुद नहीं कर लिया उस वक़्त तक तुम से करने के लिए नहीं कहा है) और इसी तरह मैंने उस वक़्त तक तुम्हें किसी चीज़ से नहीं रोका है जब तक कि पहले ख़ुद मैंने उस चीज़ को छोड़ न दिया हो (चूँकि मैं ख़ुद भी वह काम नहीं करता इसलिए तुम्हें भी रोकता हूँ)।[1]

हदीस में हैः

> लोगों को दीन की तरफ़ बुलाओ लेकिन ज़बान से नहीं।[2]

यानी अगर दूसरे लोगों को अपने दीन इस्लाम से जोड़ना चाहते हो तो ज़बान को मत काम में लाओ बल्कि ऐसे बनकर दिखाओ कि वह तुम्हें देखकर ख़ुद ही इस्लाम की तरफ़ खिंचे चले आएं। जब कोई आदमी कोई काम करता है तो उसके काम का असर अपने आप समाज पर भी पड़ने लगता है।

हमारे ज़माने के मशहूर फ़िलॉस्फ़र जीन-पॉल सारटर ने बड़ी अच्छी बात कही है। वैसे उसकी बात कोई नई बात नहीं है लेकिन जिस तरह से उसने अपनी बात रखी है वह ढंग बड़ा अच्छा है। उसका कहना हैः मैं जब भी कोई काम करता हूँ तो अपने साथ अपने समाज को

---

[1] नहजुल बलाग़ा, ख़ुतबा/175

[2] काफ़ी, 2/78

भी उस काम से जोड़ लेता हूँ। उसकी कही यह बात बिल्कुल सही है क्योंकि हम कोई भी काम करें, चाहे अच्छा या बुरा, अपने समाज को उस काम से चाहे-अनचाहे जोड़ ही लेते हैं। हम चाहें या न चाहें, हमारे हाथ से होने वाले हर काम से कोई न कोई ऐसा असर ज़रूर बाहर निकलता है जो कहीं न कहीं समाज को अपनी चपेट में ले ही लेता है यानी कोई भी काम हो, वह किसी न किसी तरह से समाज पर भी अपना असर छोड़ता है। असल में वह काम करके हम अपने समाज वालों से कह रहे होते हैं कि तुम लोग भी यह काम करो। जब हम कोई काम कर रहे होते हैं तो हमारा ख़ुद वह काम लोगों से कह रहा होता है कि तुम सब भी मेरी तरह यही काम करो और मेरी तरह बन जाओ। अब हम जितना भी कहें कि हमारी तरह मत बनो, इसका कोई असर नहीं होने वाला। यह नहीं हो सकता कि हम ज़बान से कुछ कहें मगर करके कुछ और दिखाएं क्योंकि देखने वाला हमारे किए को मानेगा यानी यह नहीं हो सकता है कि हम सामने वाले से कहें कि मेरे किए पर मत जाओ बल्कि जो कुछ मैं अपनी ज़बान से कह रहा हूँ बस वही करो। कोई ऐसा सोचता है तो यह बिल्कुल ग़लत सोच है और इस से कोई फ़ाएदा नहीं मिलने वाला। ऐसा हो ही नहीं सकता कि सामने वाला ज़बान से निकलने वाली बातें तो सुने मगर बोलने वाले के कैरेक्टर और चाल-ढाल पर ध्यान न दे। सामने वाले पर जो चीज़ सब से पहले अपना असर छोड़ती है वह आदमी का कैरेक्टर है, न कि उसकी ज़बान।

इसलिए ज़रूरी है कि जो भी समाज को सुधारना चाहता है वह पहले अपने आप को ठोक-बजा ले और अपने आप को ठीक कर ले। अगर उसने ऐसा नहीं किया तो वह समाज सुधारक बन ही नहीं सकता।

समाज सुधारक का काम तो यह है कि वह आगे बढ़ जाए और फिर कहे कि अब तुम लोग भी मेरे पीछे-पीछे आओ। जो आदमी अपनी जगह खड़े रहकर दूसरों से कह रहा हो कि तुम आगे बढ़ो! मैं यहीं पर खड़ा हूँ, उसमें और उस आदमी में बड़ा फ़र्क़ है जो पहले ख़ुद आगे बढ़ जाए और उसके बाद दूसरों से कहे कि अब तुम भी मेरे पीछे-पीछे आ जाओ।

नबियों और इमामों के अंदर यह बात हमें बड़ी निखरी हुई दिखाई पड़ती है। हम ने इतिहास में यही देखा है कि नबियों या इमामों ने लोगों से सदा यही कहा है हम आगे जा रहे हैं तुम पीछे-पीछे आओ। हज़रत अली[अ०] ने भी पहले आगे जाकर दिखाया और उसके बाद दूसरों से कहा कि अब तुम भी पीछे-पीछे आओ। ख़ुद रसूले इस्लाम[स०] भी ऐसा ही करते थे। अगर ऐसा न करते तो कभी भी दूसरे आँख बंद करके उनके पीछे न आते। अगर रसूले इस्लाम[स०] दूसरों से नमाज़ या नमाज़े शब पढ़ने के लिए कहते थे तो इबादत करने में दूसरों से पहले ख़ुद सब से आगे रहते थे। अगर लोगों से अल्लाह के नाम पर ख़र्च करने के लिए कहते थे तो सब से पहले ख़ुद ही यह काम करते थे यानी पहले अपनी जेब से निकाल कर दे देते थे और उसके बाद दूसरों से कहते थे। अगर दूसरों से जिहाद करने के लिए कहते थे तो पहले ख़ुद जंग के मैदान में आगे-आगे रहते थे। रसूले इस्लाम[स०] जब अपने चाहने वालों को जंग करने के लिए भेजते थे तो उन्हें देखकर दूसरे भी लड़ने के लिए तैयार हो जाते थे, अपना ख़ून बहाने और अपनी जान देने के लिए मैदान में चले जाते थे क्योंकि वह लोग सोचते थे कि जब अल्लाह के रसूल[स०] ने अपने प्यारों को लड़ने के लिए भेज दिया है, अपने दिल के टुकड़ों को मौत के मुँह में ढकेल दिया है, ख़ुद

भी हथियार लेकर मैदान में बीचोंबीच पहुँच गए हैं, तलवारें खा रहे हैं और चोटें खा रहे हैं तो हमें भी अल्लाह के नाम पर जान देने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।

अल्लाह के रसूल[स०] के लिए हज़रत अली[अ०] से बढ़कर कौन प्यारा था? हज़रत हमज़ा सय्यदुश्शुहदा[अ०] से बढ़कर वह किसे चाहते थे? अल्लाह के रसूल[स०] ने जंगे बद्र में सब से पहले हज़रत अली[अ०] को जंग के मैदान में भेजा था जो उनके दामाद भी थे और चचा के बेटे भी बल्कि रसूले इस्लाम[स०] उन्हें अपने बेटे की तरह ही समझते थे क्योंकि हज़रत अली[अ०] उन्हीं के घर में पले-बढ़े थे। रसूले इस्लाम[स०] का कोई बेटा नहीं था इसलिए वह हज़रत अली[अ०] को ही अपना बेटा समझते थे। जंगे बद्र में रसूले इस्लाम[स०] ने अपने चचा हज़रत हमज़ा[अ०] को आगे-आगे भेजा था जिनकी वह बड़ी इज़्ज़त करते थे। इसी तरह आपने अपने चचा के बेटे अबू उबैदा बिन हारिस को भेजा था और उनसे भी बड़ी मोहब्बत करते थे। यह तीनों ही मैदान में गए थे और तीनों ने ही दुश्मनों को मार गिराया था लेकिन इन तीनों में से अबू उबैदा को बहुत गहरी चोटें आई थीं जिनकी वजह से वह शहीद हो गए थे मगर हज़रत अली[अ०] और हज़रत हमज़ा[अ०] को ज़्यादा चोटें नहीं आई थीं और दुश्मनों को मार कर वापस आ गए थे।

अब यहाँ पर सवाल यह है कि इमाम हुसैन[अ०] ने कितनी बातें कीं और कितना करके दिखाया? इसका सीधा सा जवाब यह है कि इमाम हुसैन[अ०] ने बातें बहुत कम की थीं और काम बहुत बड़ा करके दिखाया था। अगर आदमी करके दिखा रहा हो तो बोलने और कहने की ज़्यादा ज़रूरत नहीं पड़ती है।

इमाम हुसैन[अ०] ने अपने एक ख़ुतबे में फ़रमाया थाः

जो भी अपना ख़ून हमारे साथ बहाना चाहता है और जो भी अल्लाह से मिलना चाहता है बस वही हमारे साथ आए।[1]

इमाम हुसैन[अ०] यह कहना चाह रहे थे कि ऐसा हर आदमी हमारे बीच से निकल कर चला जाए जो किसी लालच की वजह से आ गया है। हमें ऐसा आदमी नहीं चाहिए जो माल-दौलत या हुकूमत की लालच में हमारे साथ आ गया है। जिसे अपनी जान प्यारी है वह हमारे साथ बिल्कुल न आए। हमारा कारवाँ अपनी जान अपनी हथेली पर लेकर निकलने वालों का कारवाँ है। इस कारवाँ में सब से अनमोल जान ख़ुद इमाम हुसैन[अ०] की थी। अगर इमाम हुसैन[अ०] अपने प्यारों को मदीने में ही छोड़ आते तो क्या कोई इस बात पर सवाल उठाता कि यह आपने क्या किया कि अपने भाईयों-बेटों को तो वहीं छोड़ आए? यह सवाल कोई भी न करता लेकिन अगर इमाम हुसैन[अ०] अपने प्यारों को करबला के मैदान में लेकर न आते और अकेले ख़ुद ही शहीद हो जाते तो कभी वह करबला न बन पाती जो आज हमारे सामने है। इमाम हुसैन[अ०] ने एक ऐसा रास्ता चुना था जिससे उनका काम अल्लाह के यहाँ बहुत ऊँचाईयों पर पहुँच गया था। इमाम हुसैन[अ०] ने अपने लिए कुछ भी नहीं बचाया था बल्कि सब कुछ अल्लाह के रास्ते में निछावर कर दिया था। इमाम हुसैन[अ०] जिन लोगों को अपने साथ लेकर आए थे वह भी ज़ोर-ज़बरदस्ती से नहीं आए थे बल्कि उन सब की सोच, ईमान और अक़ीदे[2] भी इमाम हुसैन[अ०] से जुड़े हुए थे। सिरे से इमाम हुसैन[अ०] इस बात पर तैयार ही नहीं थे कि उनके साथियों में एक भी आदमी ऐसा आ जाए जिसके अंदर थोड़ी सी भी

---

[1] अल-लहूफ़/26

[2] आस्थाएं

कमज़ोरी हो और इसी लिए इमाम ने रास्ते में दो-तीन बार अपने साथियों को छांट दिया था। जिस दिन इमाम हुसैन[अ०] ने मक्का छोड़ा था उसी दिन एलान कर दिया था कि जिसे अपनी जान प्यारी है वह हमारे साथ बिल्कुल न आए लेकिन उस वक़्त तक कुछ लोगों को लग रहा था कि शायद इमाम हुसैन[अ०] कूफ़े जाएंगे और वहाँ जंग होगी जिसमें इमाम हुसैन[अ०] जीत जाएंगे जिसके बाद हुकूमत की बातें होंगी। कहीं ऐसा न हो कि हम पीछे रह जाएं इसलिए ऐसे लोग भी इमाम के साथ हो लिए थे।

इमाम हुसैन[अ०] ने रास्ते में एक ख़ुतबा दिया था जिसमें कहा थाः ऐ लोगो! अगर किसी को यह लगता है कि हम किसी ऊँची जगह पर पहुँचने वाले हैं या हम हुकूमत की लालच में घर से निकले हैं तो ऐसा कुछ भी नहीं है। जो भी ऐसा सोचता है वह यहीं से वापस चला जाए।

इतना सुनकर कुछ लोग वापस चले भी गए थे। इमाम हुसैन[अ०] ने आख़िरी बार आशूर की रात में भी छटनी करना चाही थी लेकिन उस रात एक भी आदमी ऐसा नहीं निकला था जो इमाम हुसैन[अ०] को छोड़कर गया हो। यह बात बिल्कुल तय है कि शबे आशूर इमाम हुसैन[अ०] को छोड़कर जाने वाला कोई भी नहीं था और सब ने यह बात साबित कर दी थी कि अब हुसैनी फ़ौज में कमज़ोर आदमी कोई भी नहीं बचा है।

अगर आशूरा के दिन इमाम हुसैन[अ०] का कोई साथी बल्कि अगर कोई बच्चा भी कमज़ोरी दिखा देता और दुश्मन की मज़बूत फ़ौज से हाथ मिलाकर अपने आप को बचा लेता तो यह इमाम हुसैन[अ०] और उनके मिशन के लिए बड़ा घातक होता लेकिन इसके उलट हुआ और वह यह कि ख़ुद दुश्मन की फ़ौज से कुछ लोग इमाम

हुसैन[अ०] की तरफ़ चले आए थे। इमाम हुसैन[अ०] का कमाल यह था कि उन्होंने दुश्मन की उस फ़ौज से भी लोगों को अपनी तरफ़ खींच लिया था जिस फ़ौज को कोई भी ख़तरा नहीं था जबकि इमाम हुसैन[अ०] की तरफ़ ख़तरा ही ख़तरा ही था। इमाम हुसैन[अ०] ने पहले ही अपने साथियों को न छांट दिया होता तो करबला में आने के बाद ऐसे बहुत सारे मामले समाने आते जब इमाम हुसैन[अ०] के साथी उन्हें छोड़-छोड़कर दुश्मन से जा मिलते। यह भी हो सकता था कि इमाम हुसैन[अ०] के आधे साथी उन्हें छोड़कर दुश्मन से जा मिलते और फिर वहाँ इमाम हुसैन[अ०] के बारे में उल्टी-सीधी बातें भी करते क्योंकि जो भी इमाम हुसैन[अ०] को छोड़कर जाता वह वहाँ जाकर यह नहीं कहता कि मेरा ईमान कमज़ोर है या मुझे अपनी जान प्यारी है बल्कि तरह-तरह के बहाने बनाता और यह साबित करने की कोशिश करता कि हम ने बहुत सोचा-समझा और हमारी समझ में यही आया है कि हुसैन[अ०] का रास्ता ग़लत है। इसलिए हम उन्हें छोड़कर आ गए हैं लेकिन करबला में ऐसा कुछ भी नहीं हुआ और यही इमाम हुसैन[अ०] का कमाल है। यही हुसैनी मिशन की कामयाबी का सुबूत है।

हुर[अ0] का इमाम हुसैन[अ0] की तरफ़ आना

इमाम हुसैन[अ०] दुश्मन के एक बहुत बड़े सरदार को भी अपनी तरफ़ खींच लाए थे जो यज़ीदी फ़ौज का एक बहुत बड़ा कमांडर था और जिसे बाद में पूरी फ़ौज की कमांड मिलने वाली थी। उस कमांडर का नाम हुर बिन यज़ीद रियाही था। हुर किसी छोटे-मोटे आदमी का नाम नहीं था। अगर यज़ीदी फ़ौज में उमरे साद के बाद कोई दूसरे नम्बर पर था तो वह बस हुर बिन यज़ीद रियाही

ही थे। हुर बिन यज़ीद रियाही एक बहुत ऊँची हस्ती का नाम था। हुर उस आदमी का नाम था जिसे हज़ार घुड़सवारों के साथ भेजा गया था लेकिन इमाम हुसैन[अ०] के ईमान और उनके मिशन की ताक़त ने हुर को अपनी तरफ़ खींच लिया था और हुर ने तौबा कर ली थी जबकि हुर ने ही सब से पहले इमाम हुसैन[अ०] पर तलवार उठाई थी।

हुर एक बड़े ही बहादुर आदमी थे और दूर-दूर तक उनकी बहादुरी के चर्चे थे। उनकी बहादुरी का सब से बड़ा सुबूत यही है कि उन्हें एक हज़ार घुड़सवारों की कमांड देकर इमाम हुसैन[अ०] को घेर कर करबला लाने के लिए भेजा गया था। इमाम हुसैन[अ०] हुर बिन यज़ीद रियाही के दिल में बस गए थे। हुसैन[अ०] ने हुर के दिल में एक ऐसी आग भड़का दी थी कि अब हुर को किसी तरह चैन ही नहीं मिल पा रहा था जबकि हुर बिन यज़ीद रियाही भी दूसरे सारे लोगों की तरह दुनिया की लालच में ही करबला आए थे लेकिन हुसैन[अ०] ने उनके दिल में ईमान की जो आग भड़का दी थी वह आग उन्हें इमाम हुसैन[अ०] की तरफ़ ढकेल रही थी मगर दूसरी तरफ़ से दुनिया की लालच उनसे यह भी कहती जा रही थी कि ऐ हुर! अगर हुसैन[अ०] के साथ चले गए तो कुछ ही देर में तुम्हारी जान भी चली जाएगी। फिर यह लोग तुम्हारा सारा माल और सारी दौलत भी लूट लेंगे, तुम्हारे बच्चे अकेले रह जाएंगे, तुम्हारी बीवी किसके सहारे जिएगी... यह सारी बातें उन्हें इमाम हुसैन[अ०] के पास जाने से रोक रही थीं। एक तरफ़ से ईमान उन्हें इमाम हुसैन[अ०] की तरफ़ ढकेल रहा था और दूसरी तरफ़ से दुनिया की लालच उन्हें इमाम हुसैन[अ०] के पास जाने से रोक रही थी। हुर बड़ी बुरी तरह से फंसे हुए थे। अचानक लोगों ने देखा कि हुर का पूरा बदन पूरी तरह

से कांप रहा है। किसी ने कहा कि ऐ हुर! क्या हुआ? इतना क्यों कांप रहे हो? तुम तो बड़े बहादुर आदमी थे। उस आदमी को लग रहा था कि हुर डर के मारे कांप रहे हैं। हुर ने कहा कि तुम्हें नहीं पता कि मेरे ऊपर क्या बीत रही है। मैं इस वक़्त जन्नत और जहन्नम के बीच में खड़ा हुआ हूँ। मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि उस जन्नत के पीछे जाऊँ जो बाद में मिलने वाली है या यहीं इस दुनिया को ख़रीद लूँ जिसके बाद जहन्नम मेरा ठिकाना होगा। काफ़ी देर तक हुर इसी तरह अपने आप से लड़ते रहे लेकिन आख़िर में हुर ने जो फ़ैसला लिया था वह उनके नाम से बड़ा मेल खाता था क्योंकि इमाम हुसैन[अ०] ने हुर से यही कहा था कि हुर ने आज़ादी का फ़ैसला लिया है। कहीं ऐसा न हो कि दुश्मन उधर जाने से रोक ले, इसलिए पहले तो हुर धीरे-धीरे इमाम हुसैन[अ०] की तरफ़ बढ़ते रहे और उसके बाद अचानक अपने घोड़े को एढ़ दी और बड़ी तेज़ी से इमाम हुसैन[अ०] के पास पहुँच गए। उधर हुर को इस बात का भी एहसास था कि कहीं ऐसा न हो कि वह लोग यह समझ लें कि हुर हमला करने आ रहा है इसलिए हुर ने यह बताने के लिए कि मैं हमला करने के लिए नहीं आ रहा हूँ, दूर से ही अपनी ढाल को झुका लिया था और यही इस बात की निशानी थी कि मैं हमला करने नहीं आ रहा हूँ बल्कि अमान चाहता हूँ।

सब से पहले हुर का सामना इमाम हुसैन[अ०] से हुआ क्योंकि इमाम ख़ेमे के बाहर ही खड़े हुए थे। हुर ने आगे बढ़कर सलाम कियाः *अस्सलामु अलैका या अबा अब्दिलल्लाह।* उसके बाद कहा कि ऐ मौला! मैं बड़ा गुनाहगार हूँ। मैं वही मुजरिम[1] हूँ जिसने आपका रास्ता रोक लिया था। फिर हुर ने अपने अल्लाह से कहा कि ऐ

---

[1] अपराधी

पालने वाले! अपने इस गुनाहगार बन्दे को माफ़ कर दे। ऐ अल्लाह यह वही गुनाहगार बन्दा है जिसने तेरे प्यारों को डरा दिया था। (रास्ते में जब इमाम हुसैन[अ०] के घर वालों ने हुर को एक हज़ार घुड़सवारों के साथ देखा था तो वह सब पहली बार अपने दुश्मन को देख रहे थे और ज़ाहिर है कि एक दम से एक हज़ार सिपाही जब सामने खड़े होंगे तो हर एक का दिल दहल जाएगा।) उसके बाद हुर ने इमाम हुसैन[अ०] से कहा कि मौला! मैं सच्चे दिल से तौबा कर रहा हूँ और अपने आप को इस गुनाह को धोना चाहता हूँ। मेरा गुनाह बस एक ही तरह से मिट सकता है और वह यह कि आपके ऊपर अपनी जान निछावर कर दूँ। मैं आपकी इजाज़त से तौबा करना चाहता हूँ। पहले मुझे यह बता दीजिए कि मेरी तौबा क़ुबूल हुई कि नहीं? हुर के सामने इमाम हुसैन[अ०] खड़े थे जो अपने लिए कुछ चाहते ही नहीं थे। इमाम हुसैन[अ०] यह बात भी जानते थे कि हुर चाहे तौबा करे या न करे, अब हालात नहीं बदलने वाले लेकिन इमाम हुसैन[अ०] हुर को अपने लिए चाहते ही नहीं थे। वह हुर को भी अल्लाह के लिए चाहते थे। इसलिए हुर के सवाल के जवाब में कहा कि ऐ हुर! तुम्हारी तौबा क़ुबूल हो गई है और भला क्यों क़ुबूल नहीं होगी? क्या कभी अल्लाह के करम का रास्ता किसी तौबा करने वाले के ऊपर बंद हो सकता है? ऐसा कभी नहीं हो सकता। हुर ने जैसे ही सुना कि उनकी तौबा क़ुबूल हो गई है तो उनका दिल ख़ुश हो गया। हुर ने कहा कि अल्लाह का शुक्र है कि मेरी तौबा क़ुबूल हो गई है। इसलिए मुझे अब मैदान में जाकर जंग करने की इजाज़त दे दीजिए ताकि मैं आपके ऊपर अपनी जान निछावर कर सकूँ। इमाम हुसैन[अ०] ने कहा कि ऐ हुर! तुम हमारे मेहमान हो। आओ! अपने घोड़े से नीचे उतर आओ और कुछ देर हमारे साथ बैठो। हम तुम्हारी कुछ मेहमानदारी तो कर लें लेकिन हुर अपने घोड़े से नीचे नहीं उतरे क्योंकि जंग

करने के लिए वापस जाना चाहते थे। इमाम हुसैन[अ०] ने बहुत कहा मगर वह नहीं माने। कुछ उलमा ने लिखा है कि हुर अपने घोड़े से उतरकर इसलिए इमाम हुसैन[अ०] के साथ नहीं बैठ रहे थे कि कहीं ऐसा न हो कि इमाम के ख़ेमों से कोई बच्चा निकल आए और कहने लगे कि यह तो वही आदमी है जिसने हमारा रास्ता रोक लिया था और हुर को शर्मिंदा होना पड़े। इसलिए हुर जल्दी से वापस जंग के मैदान में जाना चाहते थे। बहरहाल इमाम हुसैन[अ०] ने हुर को इजाज़त दे दी। हुर मैदान में गए। जाकर लोगों के सामने खड़े हो गए। हुर ख़ुद भी कूफ़ी थे इसलिए कूफ़े वालों से बोले कि ऐ कूफ़ियो! कितनी अजीब सी बात है कि मैंने इमाम हुसैन[अ०] को कूफ़े बुलाने के लिए कोई ख़त नहीं लिखा था मगर तुम लोगों ने और तुम्हारे सरदारों ने ख़त पर ख़त लिखकर हुसैन बिन अली[अ०] को अपने यहाँ बुलाया था। तुम लोगों ने इमाम हुसैन[अ०] से उनकी मदद करने का वादा किया था। अब तुम लोग किस क़ानून, किस फ़ार्मूले, किस दीन और किस कल्चर के हिसाब से अपने घर बुलाए हुए मेहमान के साथ यह सब कर रहे हो?

यह हैं इमाम हुसैन[अ०] और यह है उनके अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने का ढंग कि जो आदमी कभी जानी दुश्मन था आज वही आदमी हुसैन[अ०] के साथ खड़ा हुआ है और दुश्मनों से कह रहा है कि यह तुम ने क्या किया कि इमाम हुसैन[अ०] से किए अपने सारे वादे तोड़ दिए।

(5)
अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर
उलमा की नज़र में

जिस तरह अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर ने हुसैनी मिशन को आसमान की ऊँचाईयों पर पहुँचा दिया है उसी तरह हुसैनी मिशन भी अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर को बहुत ऊपर ले गया है। सवाल यह है कि क्या किसी इस्लामी क़ानून को ऊँचाईयों पर ले जाया जा सकता है और इसका दर्जा बढ़ाया जा सकता है? क्या इमाम हुसैन[अ०] इस इस्लामी क़ानून को ऊपर या नीचे ले जा सकते थे? नहीं! ऐसा कोई भी नहीं कर सकता और कहने का मतलब भी यह बिल्कुल नहीं है कि इस्लाम में अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर की पहले से अपनी एक ख़ास जगह थी जिसे इमाम हुसैन[अ०] ने बढ़ा दिया था। यह काम तो कोई भी नहीं कर सकता। यहाँ तक कि रसूले इस्लाम[स०]

भी यह काम नहीं कर सकते। यह काम बस अल्लाह का है और वही यह काम कर सकता है। अल्लाह ने ही सारे इस्लामी क़ानून अपने नबियों के हाथों दूसरे बन्दों तक पहुँचाए हैं और उसी ने अपने हर क़ानून के लिए एक ख़ास दर्जा और ख़ास जगह रखी है। दूसरा कोई आदमी तो दूर की बात है, ख़ुद रसूले इस्लाम[स०] भी किसी इस्लामी क़ानून को नहीं बदल सकते।

अब आइए! देखते हैं कि उलमा ने अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के बारे में क्या कहा है। उलमा कहते हैं कि इस्लाम में एक क़ानून है जो अल्लाह के रसूल[स०] की हदीस भी हैः

> जब दो ख़ास चीज़ें एक जगह जमा हो जाएं तो छोटी वाली को छोड़ दो और बड़ी वाली को ले लो।

इस हदीस और इस इस्लामी क़ानून को एक मिसाल से समझते हैं। किसी छीनी-झपटी हुई ज़मीन पर जाना हराम है। अब अगर किसी ऐसी ज़मीन पर कोई आदमी या जानवर डूब रहा हो तो क्या करना चाहिए? या तो उस ज़मीन पर चले जाना चाहिए (जो कि हराम काम है) और डूबते हुए को बचा लेना चाहिए या दूर से खड़े रहकर ही उस डूबते हुए को देखते रहना चाहिए क्योंकि उस ज़मीन पर जाना हराम है। ऐसे मामले में क्या करना चाहिए? यहाँ दो ख़ास चीज़ों में टकराव हो रहा है जिनमें से एक वाजिब है और हराम। किसी की जान बचाना वाजिब है और छीनी हुई ज़मीन पर जाना हराम है। ऐसी ज़मीन पर जाना इसलिए हराम है क्योंकि जिसकी चीज़ है उसकी इजाज़त के बिना उसे छूना ग़लत है और इस्लाम इसे गुनाह व हराम समझता है। अब

यहाँ पर एक माल का एहतेराम[1] है और दूसरा जान का एहतेराम। जान के एहतेराम के सामने माल के एहतेराम की कोई जगह नहीं बनती है। इसलिए अगर ऊपर वाले हालात बन जाएं तो माल (ज़मीन) के एहतेराम को छोड़कर डूबने वाले की जान बचाना ज़रूरी है। डूबने वाले की जान बचाने के लिए अगर कोई ऐसी ज़मीन पर चला जाए तो यह कहीं से कहीं तक गुनाह नहीं माना जाएगा बल्कि उलटा यह तो सवाब का काम कहलाएगा।

अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर की हद

अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के बारे में अगला सवाल यह पैदा होता है कि इसकी हद (सीमा) क्या है? अगर हम अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करना चाहें तो किस हद तक आगे जा सकते हैं?

कभी ऐसा होता है कि जब हम अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करते हैं तो हमें इस काम से किसी भी तरह का कोई नुक़सान या ख़तरा नहीं होता है, न जान का, न माल का और न इज़्ज़त का। ऐसे में अगर हम अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर न करें तो यह हमारी काहिली होगी और कुछ नहीं।

यहाँ तक कि सारे उलमा एक ही बात कहते हैं और उनके बीच किसी तरह का कोई इख़्तिलाफ़ (झगड़ा) नहीं है लेकिन अब सवाल यह है कि अगर कोई अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करे और उसकी जान,

[1] सम्मान

माल या इज़्ज़त-आबरू ख़तरे में पड़ जाए तो क्या किया जाए? अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर किया जाए या न किया जाए? हो सकता है कि जिसे अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर किया जा रहा हो यानी जिसे सही बात बताई जा रही हो या सही रास्ता दिखाया जा रहा हो वह पलट कर गाली दे दे, चोट पहुँचा दे, बेइज़्ज़ती कर दे.... या जान से ही मार दे। ऐसे में क्या किया जाए? अगर अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर किया तो आदमी की अपनी जान ख़तरे में पड़ जाएगी, घर वालों की जान ख़तरे में पड़ जाएगी या सब को धमकियाँ मिलने लगेंगीं। क्या ऐसे हालात में अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर नहीं करना चाहिए?

कुछ उलमा ने कहा है कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर की सीमा बस वहाँ तक है जहाँ तक कोई नुक़सान न पहुँच रहा हो या किसी तरह का कोई ख़तरा न हो जैसे न जान जाने का ख़तरा हो, न माल के हाथ से जाने का ख़तरा हो, न इज़्ज़त के छिन जाने का ख़तरा हो और न किसी तरह की चोट के लगने का ख़तरा हो। लेकिन सच्ची बात यह है कि जो लोग भी अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के बारे में ऐसी सोच रखते हैं वह असल में अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर का दर्जा बहुत घटा देते हैं क्योंकि इन लोगों का यह मानना है कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करना तो चाहिए मगर बस वहीं तक जहाँ तक किसी तरह का कोई ख़तरा न हो यानी अगर अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर से आपकी इज़्ज़त जा रही हो तो अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर मत कीजिए और अपनी इज़्ज़त बचा

लीजिए क्योंकि सामने वाले के मुँह से अपने लिए गालियाँ सुनना कोई अच्छी बात नहीं है।

वैसे हम भी इस बात को मानते हैं कि इज़्ज़त का इस्लाम में बहुत बड़ा दर्जा है और इस्लाम कभी नहीं चाहता कि किसी की इज़्ज़त मिट्टी में मिले। बेशक! इस्लाम मोमिन की इज़्ज़त और उसके बदन का एहतेराम (आदर) करता है। किसी को भी यह हक़ नहीं पहुँचता कि वह बैठे-बिठाए अपने बदन को चोट पहुँचा ले, अपनी जान को ख़तरे में डालना तो बहुत बड़ी बात है। बहरहाल इस बात में किसी भी तरह का कोई शक नहीं है कि इस्लाम ने अपनी जान को ख़तरे में डालने की छूट बिल्कुल नहीं दी है। ख़ुद क़ुरआन में लिखा हुआ हैः ''अपने आप को हलाकत (ख़तरे) में मत डालो!''[1]

अगर कोई छत से नीचे छलांग लगाकर अपनी जान दे दे (चाहे उसने ऐसा क़र्ज़े में डूबे होने की वजह से किया हो, चाहे अपने इश्क़ में बर्बाद होने की वजह से किया हो और चाहे अपनी सारी दुनिया लुट जाने की वजह से किया हो) इस्लाम में यह काम किसी भी तरह से जायज़ नहीं है। यह बिल्कुल ऐसे ही है जैसे उसने अपनी जान नहीं दी है बल्कि किसी दूसरे की जान ले ली है। क़ुरआन ने इस काम को साफ़-साफ़ ''क़त्ल'' बताया है।ः

''उसकी सज़ा जहन्नम है जहाँ वह हमेशा-हमेशा रहेगा।''[2]

जिसने भी किसी की जान ली, अपनी जान या किसी दूसरे की, उसका ठिकाना जहन्नम है। जो लोग भी यह सोचते हैं कि उनकी जान उनके हाथ में है वह बिल्कुल ग़लत सोचते हैं। ख़ुद अपनी जान देना भी हराम है।

---

[1] सूरए बक़रा/195

[2] सूरए निसा/93

इसी तरह किसी भी आदमी का पैसा, माल-दौलत या उसकी कोई भी चीज़ इस्लाम में मोहतरम है यानी इस्लाम उस चीज़ की इज़्ज़त करता है। कोई भी आदमी अपनी किसी भी चीज़ को बर्बाद नहीं कर सकता क्योंकि वह चीज़ उसकी तो है लेकिन वह सिर्फ़ उसकी नहीं है बल्कि उसमें दूसरों का भी हिस्सा है। कोई भी चीज़ हो, पहले वह समाज की प्रापर्टी है और इसके बाद किसी की निजी प्रापर्टी है। इसलिए कोई भी चीज़ हो उसे इस्तेमाल तो किया जा सकता है लेकिन किसी भी हाल में इस्राफ़ नहीं किया जा सकता यानी उसे बर्बाद नहीं किया जा सकता। इस्लाम ने यह छूट किसी को भी नहीं दी है। इस्लाम हर मोमिन की जान की भी इज़्ज़त करता है, उसके माल की भी इज़्ज़त करता है और उसकी आबरू की भी इज्ज़त करता है। जब ऐसा है तो क्या किसी को यह हक़ (अधिकार) पहुँचता है कि वह बैठे-बिठाए अपनी इज़्ज़त-आबरू दाँव पर लगा दे? नहीं! ऐसा नहीं हो सकता और इस्लाम ने इसकी छूट भी नहीं दी है। बात तब बिगड़ती है जब अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर का मामला बीच में आ जाता है। अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर बीच में आता है तो सवाल यह उठता है कि अगर किसी आदमी की जान, माल या इज़्जत-आबरू और अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर आपस में टकरा जाएं तो किसे छोड़ा जाए और किसे बचाया जाए? इन दोनों में से एक चीज़ तो हमें छोड़ना ही होगी क्योंकि अल्लाह के रसूल[स०] की हदीस हमें पहले ही बता चुकी है कि जब दो इस्लामी क़ानून आपस में टकरा जाएं तो जो छोटा हो उसे जाने दो और जो बड़ा हो उसे बचा लो।

नुक़सान न पहुँचे

कुछ मुसलमान उलमा ने कहा है बल्कि दुख के साथ कहना पड़ता है कि कुछ ऐसे शिया उलमा ने भी यह बात मानी है कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर की सीमा बस वहीं तक है जब तक कोई नुक़सान न हो रहा हो या कोई ख़तरा न हो यानी अगर अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने वाले को किसी तरह का नुक़सान या ख़तरा हो तो उसे चाहिए कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर न करे क्योंकि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के मुक़ाबले में इन्सान की जान, माल और इज़्ज़त का दर्जा कहीं बड़ा है। इसलिए अपनी जान, माल व इज़्ज़त को बचा लीजिए और अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर को छोड़ दीजिए।

मौज़ू (Subject) देखा जाएगा

दूसरे उलमा का मानना है कि ऐसा नहीं है बल्कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर की जगह इन सारी चीज़ों से ऊपर है लेकिन अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करते हुए हमें यह देखना होगा कि हम यह काम क्यों करना चाहते हैं और किस के लिए करना चाहते हैं। हो सकता है कि जिस चीज़ के लिए अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर किया जा रहा हो वह बहुत छोटी सी चीज़ हो जैसे कोई गली में कूड़ा फैंक कर गंदगी फैला रहा हो जबकि सब जानते हैं कि गलियों को गंदा करना ग़लत है। यहाँ भी अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर किया जाना चाहिए और कूड़ा फैंकने वाले से कहना चाहिए कि ऐसा करना ग़लत

है। अब अगर पता हो कि जो आदमी कूड़ा फेंक रहा है अगर उसे इस काम से रोका जाएगा तो वह बद्तमीज़ी करेगा और साथ में गालियाँ भी देगा तो यहाँ अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने की कोई ज़रूरत नहीं हैं क्योंकि यह कोई ऐसा काम नहीं है कि आदमी अपनी इज़्ज़त को दाँव पर लगा दे।

इसके मुक़ाबले में यह भी हो सकता है कि एक ऐसे काम के लिए अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करना पड़े जिस पर इस्लाम ने बहुत ज़ोर दिया है और वह ऐसा काम है जिसे इस्लाम जान, माल व इज़्ज़त से भी बड़ा मानता है जैसे हो सकता है कि एक ऐसा वक़्त आ जाए कि क़ुरआन ही ख़तरे में पड़ गया हो और दुश्मन की सारी कोशिशें यह हों कि सिरे से क़ुरआन की बातों को ही तोड़-मरोड़ दिया जाए या ऐसे हालात बन जाएं कि अदालत (इंसाफ़) को मिटाया जा रहा हो जबकि क़ुरआन ने साफ़-साफ़ एलान कर दिया है कि अल्लाह ने जितने भी नबी भेजे थे उन्हें इसलिए भेजा था ताकि वह समाज में इंसाफ़ का राज फैला सकेंः

> बेशक! हम ने अपने रसूलों को खुली निशानियों के साथ भेजा है और उनके साथ किताब और मीज़ान (तराजू) को नाज़िल किया है ताकि लोग समाज में इंसाफ़ फैलाने के लिए उठ खड़े हों।[1]

इस्लाम ने ज़ुल्म (अत्याचार) और अदालत (इंसाफ़) दोनों को बहुत गहराई के साथ देखा है और इसी को समाजी ज़िन्दगी की कसौटी माना है। यहाँ तक कि अल्लाह के रसूल[स०] तो यह भी कह गए हैं कि कुफ़्र (अल्लाह के इन्कार) के साथ तो मुल्क चल सकता है मगर ज़ुल्म के साथ नहीं चल सकता। कोई भी समाज

---

[1] सूरए हदीद/25

ज़ुल्म के साथ आगे नहीं बढ़ सकता बल्कि टूट-फूट कर बिखर जाएगा।

यह भी हो सकता है कि ऐसे हालात बना दिए जाएं कि मुस्लिम एकता पर ही ख़तरे के बादल मंडलाने लगें जबकि इस्लाम ने एकता को अपना बुनियादी क़ानून बनाया है। सूरए आले इमरान की आयत/103 में है कि अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से थाम लो और टुकड़ों में न बंटो।

क्या ऐसी जगहों और ऐसे हालात में भी हम कह सकते हैं कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर नहीं करना चाहिए क्योंकि हमारी जान, माल या इज़्ज़त को ख़तरा है।

नहीं! ऐसा नहीं है क्योंकि बड़े इस्लामी मामलों में अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने की कोई सीमा नहीं है। अगर कोई बड़ा इस्लामी मामला हो तो अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के मुक़ाबले में कोई चीज़ नहीं टिक सकती और कोई भी चीज़ अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने से नहीं रोक सकती।

इसी लिए हम देखते हैं कि इमाम हुसैन[अ०] ने अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर को आसमान की ऊँचाईयों पर पहुँचा दिया है क्योंकि इमाम हुसैन[अ०] ने सारी दुनिया को यह बात समझा दी कि ऐसा वक़्त भी आ सकता है जब अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करना इतना ज़रूरी हो जाए कि जान, माल और इज़्ज़त यानी हर चीज़ को दांव पर लगा देना पड़े और किसी भी चीज़ को अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के मुक़ाबले में बड़ा न समझा जाए।

सन् 61 हिजरी में कोई भी हुसैनी क्रांति को हज़्म नहीं कर पा रहा था। वैसे जिस लेवल पर जाकर वह

लोग सोच रहे थे ग़लत भी नहीं सोच रहे थे लेकिन जो लेवल इमाम हुसैन[अ०] की सोच का था वह उन सब के लेवल से ऊपर था। इमाम हुसैन[अ०] बहुत आगे जाकर सोच रहे थे। उन लोगों का सोचना यह था कि अगर यह सफ़र हुकूमत पाने के लिए है तो इसका रिज़ल्ट कोई बहुत अच्छा नहीं निकलने वाला और सही भी कहते थे। ख़ुद इमाम हुसैन[अ०] ने भी आशूरा के दिन जो हाल देखा उसके बाद यही कहा था कि इब्ने अब्बास का कमाल यह है कि वह इतने नाज़ुक पर्दे के पीछे से सारे हालात को पहले से ही समझ रहे थे। इब्ने अब्बास ने इमाम हुसैन[अ०] से कहा था कि ऐ अल्लाह के रसूल[स०] के बेटे! अगर आप कूफ़े जा रहे हैं तो मेरा मानना है कि कूफ़े वाले अपने वादों को तोड़ देंगे। दूसरे लोग भी यही कह रहे थे। इमाम हुसैन[अ०] कुछ लोगों को तो कोई जवाब नहीं देते थे और चुप रहते थे लेकिन इमाम ने किसी की बात पर यह भी कहा था कि जो बात तुम कह रहे हो वह बात मुझ से छुपी हुई नहीं है, मैं भी जानता हूँ।

इमाम हुसैन[अ०] ने उन हालात में यह साबित कर दिखाया था कि इस्लाम के इस अटल क़ानून यानी अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के लिए जान भी दी जा सकती है, माल-दौलत भी लुटाई जा सकती है और लोगों के बुरा-भला कहने को भी झेला जा सकता है। दुनिया में दूसरा ऐसा कौन सा आदमी है जिसने इमाम हुसैन[अ०] के बराबर अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर का दर्जा बढ़ा दिया हो? यह बस हुसैनी क्रांति का ही कमाल है कि जिसने दुनिया को यह समझा दिया कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के लिए जान भी दी जा सकती है।

निजी नुक़सान होने और इस्लाम पर आँच आने में फ़र्क़ है

करबला में हुसैनी क्रांति की कामयाबी के बाद अब इस बात की कोई जगह नहीं बचती है कि कोई यह कहे कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने की भी एक सीमा होती है। नहीं! अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर की कोई सीमा नहीं है। हाँ! इतना ज़रूर है कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर यह नहीं चाहता कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने के बाद ख़राबियाँ बढ़ जाएं। इसलिए जो लोग यह बात कहते हैं कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर की शर्त यह है कि कोई ख़राबी या गड़बड़ी पैदा न हो तो ठीक कहते हैं। अगर यह लोग नुक़सान को ख़राबी के मायनी में लेते हैं तो ठीक कहते हैं कि हो सकता है कि कोई अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करके इस्लाम के नाम पर कोई काम करना चाहता हो लेकिन इसी अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर से इस्लाम को कोई दूसरा नुक़सान पहुँच जाए यानी अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने वाले को तो कोई निजी नुक़सान न हो मगर इस्लाम को नुक़सान पहुँच जाए और इस्लाम को पहुँचने वाला वह नुक़सान उसके उस काम से कहीं बड़ा हो। बहुत से लोग अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करते हैं लेकिन उनके इस काम से इस्लाम को कोई फ़ाएदा नहीं होता है बल्कि इसके उलट जिसको नही अनिल मुन्कर कर रहे होते हैं (किसी बुराई से रोक रहे होते हैं) उसे सिरे से दीन से ही दूर कर देते हैं।

इसलिए जहाँ तक अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने से कोई ख़राबी या गड़बड़ी होने का ख़तरा हो तो हम मान सकते हैं कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर न किया जाए तो ज़्यादा अच्छा है लेकिन यह बात नहीं मानी जा सकती कि अगर अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने से नुक़सान हो रहा हो और वह भी निजी नुक़सान तो अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर नहीं करना चाहिए। यह बात सिरे से नहीं मानी जा सकती क्योंकि इमाम हुसैन[अ०] ने यह बात साबित कर दी है कि अगर जान जाने का ख़तरा हो तब भी अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर को नहीं छोड़ा जा सकता।

इस बात को साबित करने के लिए और भी सुबूत हैं जिन्हें यहाँ नहीं कहा जा सकता क्योंकि फिर बात बहुत लम्बी हो जाएगी।

इमाम हुसैन[अ०] ने बार-बार इस क़ानून के बारे में बात की थी

इमाम हुसैन[अ०] ने इस इस्लामी क़ानून का हाथ थामा और यह साबित कर दिखाया कि मैं इस क़ानून की वजह से अपना मिशन छेड़ रहा हूँ या जिन वजहों से मैं अपना मिशन छेड़ रहा हूँ उन में से कम से कम एक वजह यही अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर है। अमीरे शाम मुआविया के ज़माने से इमाम हुसैन[अ०] ने ऐसे इशारे देना शुरू कर दिए थे जिन्हें देखकर साफ़-साफ़ समझ में आ रहा था कि अब इमाम हुसैन[अ०] अपना मिशन छेड़ने वाले हैं। इमाम हुसैन[अ०] ने मक्के में मिना में अल्लाह के रसूल[स०] के बहुत सारे सहाबियों को

इकट्ठा किया था और उनके बीच अपनी बात रखी थी, उनके सामने वह सब कुछ साफ़-साफ़ कह दिया था जो इमाम उन लोगों को सुनाना चाहते थे और यह भी बता दिया था कि अब हालात कितने बिगाड़ दिए गए हैं, इस्लामी समाज में पनप चुकी सारी बुराईयों का चेहरा उन लोगों को दिखा दिया था और फिर यह भी कहा थाः इन हालात में आप लोगों की ज़िम्मेदारी और इस्लामी ड्युटी बहुत बढ़ जाती है और यह काम आप लोगों को ही करना है।

इमाम हुसैन[अ०] ने अमीरे शाम मुआविया के आख़िरी दिनों में एक लेटर लिखा था जिसमें बहुत कुछ लिखा था जिसमें से एक बात यह भी थीः ''ऐ मुआविया इब्ने अबी सुफ़यान! अल्लाह की क़सम! मैं अभी तुम से जंग नहीं कर रहा हूँ जिसकी वजह से मैं डरता हूँ कि कहीं अल्लाह मुझ से सवाल न कर ले।'' असल में इमाम हुसैन[अ०] यह कहना चाह रहे थे कि मैं अगर चुप हूँ तो इसका मतलब यह मत निकालना कि हुसैन[अ०] तो कुछ बोल ही नहीं रहा है। मैं सही वक़्त का इंतेज़ार कर रहा हूँ ताकि मेरा मिशन कामयाब रहे और मैं जिस काम को पूरा करने की कोशिश कर रहा हूँ उसमें मुझे एक क़दम आगे बढ़ा दे।

इमाम हुसैन[अ०] ने मोहम्मद बिन हनफ़िया के नाम अपनी वसिय्यत में और मक्के से निकलते वक़्त भी बिल्कुल साफ़-साफ़ यह बात बता दी थीः

> मैं दुनिया की मोहब्बत या हुकूमत की लालच में मदीना नहीं छोड़ रहा हूँ और न ही मैं ज़ुल्म करने या बुराईयाँ फैलाने के लिए अपने घर से निकल रहा हूँ बल्कि मैं अपने नाना की उम्मत में आए हुए बिगाड़ को सुधारने के लिए खड़ा हुआ हूँ। मैं अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल

> मुन्कर करना चाहता हूँ (यानी लोगों को अच्छे कामों की तरफ़ लाना और बुरे कामों से बचाना चाहता हूँ) और मैं अपने नाना और अपने बाबा अली बिन अबी तालिब[अ०] के रास्ते पर चलना चलता हूँ।[1]

इमाम हुसैन[अ०] ने रास्ते में बहुत सी जगहों पर अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के बारे में बात की थी और ख़ास बात यह है कि उन सारी जगहों पर कहीं भी कूफ़ियों के बुलावे या यज़ीद की बैअत को ठुकराने का नाम नहीं लिया था। अजीब बात यह है कि जैसे-जैसे कूफ़े से मिलने वाली ख़बरें बिगड़ती जा रही थीं और इमाम हुसैन[अ०] को मायूस करती जा रही थीं वैसे-वैसे इमाम के ख़ुतबों का अंदाज़ व लहजा भी बदलता जा रहा था। ख़ुतबों से निकलने वाली आग की लपटें बढ़ती जा रही थीं। जनाबे मुस्लिम बिन अक़ील[अ०] की शहादत की ख़बर मिलने के बाद इमाम हुसैन[अ०] के ख़ुतबे की घन-गरज कुछ ऐसी थीः

> ऐ लोगो! दुनिया पीठ फेर चुकी है और इस ने अपने जाने का एलान कर दिया है और आख़िरत (क़यामत) सामने आ रही है और इसका असर दिखने लगा है।

इसके बाद इमाम हुसैन[अ०] ने फ़रमायाः

> क्या तुम लोग नहीं देख रहे हो कि न ही हक़ (अल्लाह के बताए रास्ते) पर कोई चलने वाला है और न ही ग़लत बातों से रोका जा रहा है। हालात ऐसे हैं कि अगर कोई मोमिन है तो उसे

---

[1] मक़तल अल-ख़्वारज़मी, 1/188

> चाहिए कि अपनी जान की क़ुरबानी देकर अल्लाह के पास चला जाए।[1]

इमाम हुसैन[अ०] कह रहे थे कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर इतनी बड़ी चीज़ है कि इसके लिए जान की बाज़ी भी लगा देना चाहिए।

रास्ते ही में दिए गए एक दूसरे ख़ुतबे में इमाम हुसैन[अ०] ने कहा थाः

> मैं अपने लिए मौत को कामयाबी और ज़ालिमों के साथ ज़िन्दा रहने को ज़िल्लत समझता हूँ।[2]

इमाम हुसैन[अ०] के ख़ुतबे की घन-गरज उस वक़्त आसमान की ऊँचाईयों पर पहुँच गई थी जब हालात पूरी तरह से बिगड़ गए थे और जो कुछ आगे होने वाला था वह साफ़-साफ़ दिखाई पड़ रहा था। इमाम हुसैन[अ०] ईराक़ की सीमा के अंदर पहुँचे ही थे कि उनका सामना हुर बिन यज़ीद रियाही की फ़ौजी टुकड़ी से हो गया था। हुर के साथ एक हज़ार सिपाही थे। यही वह वक़्त था जब इमाम हुसैन[अ०] ने एक बड़ा एतिहासिक ख़ुतबा दिया था जिसे *तबरी* जैसे सारे बड़े इतिहासकारों ने अपनी किताबों में लिखा है। इस ख़ुतबे में भी इमाम हुसैन[अ०] ने अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर की बात की थीः

> ऐ लोगो! अल्लाह के रसूल[स०] ने फ़रमाया था कि जो भी किसी ऐसी ज़ालिम[3] हुकूमत को देख रहा हो जिसने अल्लाह के बनाए हुए हलाल को हराम और हराम को हलाल कर रखा हो, अल्लाह से किए वादे को तोड़ दिया हो, इस्लामी

---

[1] तोहफ़ुल उक़ूल/245
[2] तोहफ़ुल उक़ूल/245
[3] अत्याचारी

> हुकूमत के सरकारी ख़ज़ाने का मुँह अपने निजी फ़ाएदे के लिए खोल दिया हो, अल्लाह के क़ानून को बदल दिया हो, जिसमें लोगों का ख़ून पानी की तरह बहाया जा रहा हो... यह सब हो रहा हो और वह हाथ पर हाथ धरे बैठा रहे तो अल्लाह को हक़ है कि ऐसे आदमी को भी उसी ज़ालिम हाकिम के साथ उठाए (यानी अल्लाह ऐसा ही करेगा)।

इसके बाद इमाम हुसैन[अ०] ने फ़रमायाः

आज जो लोग (बनी उमय्या) हुकूमत कर रहे हैं यह लोग ऐसे ही हैं। क्या तुम लोग नहीं देख रहे हो कि इन सब ने मिलकर अल्लाह के हराम को हलाल और उसके हलाल को हराम कर रखा है? क्या इन लोगों ने अल्लाह के बनाए हुए क़ानूनों को नहीं तोड़ दिया है? क्या यह लोग सरकारी ख़ज़ाने को अपने निजी फ़ाएदे में इस्तेमाल नहीं कर रहे हैं? यही आज के हालात हैं और इन हालात में जो भी हाथ पर हाथ धरे बैठा रहेगा वह भी इन्हीं लोगों के साथ गिना जाएगा।

फिर इमाम हुसैन[अ०] ने यह भी फ़रमाया कि यह काम करने के लिए सब से सही आदमी मैं ही हूँ। इसलिए मैं अपने नाना और अपने बाबा की सीरत (रास्ते) पर चलने के लिए अपने घर से निकल आया हूँ।

जब आदमी इमाम हुसैन[अ०] की इन सारी बातों को देखता है तो अपने आप उसके दिल से यह आवाज़ उठती है कि हुसैन[अ०] ऐसी ही हस्ती का नाम है जिसका नाम हमेशा-हमेशा ऊँचा रहना चाहिए क्योंकि हुसैन[अ०] ने अपनी जान इन्सानियत (मानवता) पर निछावर कर दी थी, तौहीद का झंडा ऊँचा रखने के लिए हुसैन[अ०] ने अपना सब कुछ लुटा दिया था और समाज में इंसाफ़ को फैलाने के लिए हुसैन[अ०] ने अपने पास कुछ भी नहीं

रखा था। यही वजह है कि सारी दुनिया इमाम दुनिया हुसैन[अ०] से मोहब्बत करती है। जब आदमी देखता है कि सामने वाले ने अपने लिए कुछ भी बचाकर नहीं रखा है और अपना सब कुछ इन्सानियत पर निछावर कर दिया है तो वह आदमी उसके अंदर ख़ुद अपना चेहरा देखने लगता है। हुसैन[अ०] एक ऐसी ही हस्ती का नाम है जिसके अंदर हर आदमी को अपना चेहरा दिखाई पड़ता है और इसीलिए हर आदमी उनसे मोहब्बत करता है।

(6)
अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्करः *हम ने क्या किया है?*

अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर की जान

अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के बारे में अब तक जो कुछ कहा गया है उससे पहली बात तो यह साबित है कि इस्लामी हिसाब से ''अम्र व नही'' की कोई सीमा नहीं है। इस्लाम के सारे अच्छे काम ''अम्र बिल मारूफ़'' में और सारे बुरे काम ''नही अनिल मुन्कर'' में आ जाते हैं। क़ुरआन, हदीस और हमारे इतिहास से यह बात भी साबित है कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर सिर्फ़ ज़बान से ही नहीं किया जाता बल्कि इस्लाम को बचाने और फैलाने के लिए जायज़ तरीक़े से किए जाने वाले हर काम को अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर कहते हैं। इसलिए अगर हम अपनी आम बोली में अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर का मतलब बताना चाहें तो कह सकते हैं

कि इस्लाम को बचाने और फैलाने के लिए हर जायज़ तरीक़े को इस्तेमाल करने का नाम अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर है।

अब आइए! देखते हैं कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के बारे में हम ने क्या किया है। यह बात तो तय है कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर इस्लाम के बुनियादी क़ानूनों में से है और इस्लाम की जड़ है। यह एक ऐसा इस्लामी क़ानून है जिसके बारे में क़ुरआन व हदीस से साबित है कि अगर यह क़ानून समाज से उठ गया तो सारा इस्लाम ख़तरे में पड़ जाएगा। अगर इस क़ानून को समाज ने अनदेखा कर दिया तो जैसा इस्लामी समाज को होना चाहिए वैसा वह बन ही नहीं सकता। अब सवाल यह है कि हम ने इस क़ानून को बचाने और संभाले रखने के लिए क्या किया है? बड़े दुख की बात है कि हम मुसलमानों ने इस मैदान में कोई बड़ा कारनामा नहीं किया है और इसकी वजह यह है कि इस्लाम ने अपने इस क़ानून पर जितना ज़ोर दिया है हम ने अपनी ज़िन्दगी में इसे उतनी जगह नहीं दी है यानी हम अभी तक समझ ही नहीं पाए हैं कि इस्लाम ने अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर को कितना ऊँचा दर्जा दिया है। दूसरी वजह यह है कि अभी हमें यह भी नहीं पता है कि अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर की शर्तें और सीमाएं क्या हैं और हम यह काम करने के लिए कहाँ तक जा सकते हैं।

अल्लाह के रसूल[अ0] की एक हदीस

अल्लाह के रसूल[स0] ने अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर को एक दूसरी तरह से भी समझाया है। एक हदीस में अल्लाह के रसूल[स0] फ़रमाते हैंः

> तुम सब को एक-दूसरे का ज़िम्मेदार व रखवाला बनाया गया है और तुम में से हर एक से एक-दूसरे के बारे में सवाल किया जाएगा।[1]

रसूले इस्लाम[स०] की कही इस बात को इससे अच्छे ढंग से नहीं कहा जा सकता था। इस हदीस के हिसाब से सारे मुसलमानों के बीच एक तरह का आपसी रिश्ता पाया जाता है जो उन्हें आपस में जोड़े रखता है और अगर मुसलमानों को एक-दूसरे से जोड़ने वाले इन तारों को संभालकर रखा जाए बस तभी मुसलमान समाज ठीक से आगे बढ़ सकता है और बचा भी रह सकता है। यह एक बड़ा काम है जिसके लिए सब से पहले अच्छी-ख़ासी जानकारी चाहिए यानी जिस समाज को ठीक-ठीक और पूरी जानकारी न हो वह कभी भी इस भारी काम को सही से पूरा नहीं कर सकता। फिर इस काम के लिए ताक़त, हुकूमत और हालात भी चाहिएं जो हमारे पास हैं ही नहीं। आज दुनिया की आबादी सात सौ मिलियन है[2]। जब दुनिया में सात सौ मिलियन मुसलमान रहते हैं तो फिर यह काम अभी तक क्यों नहीं हो सका है? अगर इतने सारे लोग मिलकर यह काम करना चाहें यानी इस्लाम की जड़ों को मज़बूत बनाना चाहें, मुस्लिम एकता का झंडा लहराना चाहें और सारे मुसलमानों को एक डोर में बांधना चाहें तो ऐसा क्यों नहीं कर सकते? अगर सारे मुसलमान एक प्लेटफ़ार्म पर आ जाएं तो दुनिया को उनके आगे अपना सिर झुकाना ही होगा जैसा कि आज नहीं हो पा रहा है। अगर ऐसा हो जाए तो फिर दुनिया की बड़ी ताक़तें मुसलमानों से अपनी मनमानी नहीं करा पाएंगी और न

---

[1] जामेउस्सग़ीर/95

[2] यह 1969 के आसपास की बात है। अब तो दुनिया की आबादी 7.6 अरब है।

उनके ख़ून से होली खेलेंगी लेकिन इसकी शर्त यही है कि सारी मुसलमान हुकूमतें ऐसे एक साथ आ जाएं जैसे एक डोर में मोती पिरो दिए जाते हैं।

अपने आपसी मेल-जोल, अपनी एकता, आपस में एक-दूसरे को पहचनवाने और आपसी ताल-मेल के मैदान में हम ने बहुत कम काम किया है और अभी इस रास्ते पर हम बहुत आगे नहीं बढ़ सके हैं। अगर हम देखना चाहते हैं कि हम ने इस मैदान में क्या किया है तो हमें अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर से जुड़े अपने कामों और अपनी कोशिशों पर एक नज़र डालना होगी।

हम अम्र और नही कैसे करते हैं?

अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के नाम पर और इस्लाम को फैलाने के लिए हम बहुत सारे काम करते हैं जिनमें अज़ादारी और मजलिसें भी आती हैं। हमें कभी अपनी इन मजलिसों के बारे में भी सोचना चाहिए कि अपनी मजलिसों में हम कौन-कौन सी बातें करते हैं और किस बारे में करते हैं। इसी तरह का एक दूसरा काम इस्लामी किताबें छापना है और यह काम भी हम एक तरह से अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने के लिए ही करते हैं। हमें अपनी किताबों पर भी ध्यान देना चाहिए कि हमारी किताबों में दीन की जगह कितनी है? किताबें लिखने वाले कौन लोग हैं और किस दर्जे के हैं? हमारी इन किताबों से मुसलमानों को कितना फ़ाएदा हो रहा है? इस से हमारी समझ में यह आ जाएगा कि हम किस सतह पर जाकर अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर कर रहे हैं। हमें इस बात पर भी ध्यान देना होगा कि अपने इस्लामी-समाजी

मामलों में हम कौन से मामलों को सब से ऊपर रखते हैं और कौन से मामलों को हल्का समझकर टाल देते हैं। अगर हम इस तरह से एक सर्वे कर लें तो तभी हम यह समझ पाएंगे कि हमारे समाज में अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर की सतह क्या है? और अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के मैदान में हम कितना आगे जा सके हैं?

पिछले 1400 सालों में हम ने दुनिया को एक बहुत बड़ा कल्चर दिया है और हम एक बहुत बड़ी सभ्यता व कल्चर के मालिक रहे हैं। इन 1400 सालों में से 500-600 साल तक तो सारी दुनिया में हमारा सिक्का भी चला है। अगर दुनिया की तीन-चार बड़ी सभ्यताओं का नाम लिया जाए तो उन में से एक इस्लामी सभ्यता है। अब सवाल यह है कि हम अपनी इस इस्लामी सभ्यता के लिए कितने जागरूक हैं और हम ने अपनी सभ्यता को बचाने के लिए क्या किया है? सच्चाई तो यह है कि हमारे जवान तो बस यही समझते हैं कि इस्लाम ने आज तक कोई काम किया ही नहीं है। उन्हें लगता है कि जब से इस्लाम आया है तब से लेकर आज तक बस यह होता आया है कि इस्लाम के मानने वाले इस्लाम के बनाए क़ानूनों और उसकी लाई हुई शरीअत पर चलते चले आ रहे हैं जिसका मुसलमानों को बस एक रिज़ल्ट मिला है और वह यह कि हम भी दूसरों की तरह इस दुनिया में रह रहे हैं और सांसें ले रहे हैं। हमारे जवानों को तो यह भी नहीं पता कि मुसलमानों ने पिछले 1400 सालों में कौन-कौन सी किताबें लिखी हैं। अगर कोई हम से पूछ ले कि मुसलमानों ने मैथ्मेटिक्स में क्या किया है तो हमारे पास इसका कोई जवाब नहीं होगा। उधर युरोप वालों ने जब देखा कि मुसलमान गहरी नींद सो रहे हैं तो उन्होंने

सारी बातों को अपने आप से जोड़कर अपने नाम कर लिया है। आज हमारे बीच ऐसे कई ईरानी स्कॉलर मौजूद हैं जिन्होंने इस मैदान में बड़ी मेहनत से काम किया है और भारी रिसर्च और स्टडी करने के बाद उन्होंने यह बात साबित कर दी है कि आज युरोप वाले जिन बहुत सारे कामों को अपने आप से जोड़ लेते हैं वह सिरे से उनके काम हैं ही नहीं क्योंकि यह सारा काम मुसलमानों ने किया है जिसके बारे में ख़ुद मुसलमानों को भी कुछ पता नहीं है जैसे मुसलमानों ने आर्ट, फ़िलॉस्फ़ी, फ़िज़िक्स, कैमिस्ट्री और इतिहास में बहुत काम किया है। मुसलमानों ने इन सारी बातों को सिरे से भुला दिया है जबकि यह उनका चमकता और जगमगाता हुआ इतिहास है।

जो लोग मशहद में इमाम अली रज़ा[अ०] के रौज़े की ज़ियारत करने गए हैं वह जानते हैं कि रौज़े के कैम्पस के अंदर ही एक म्युज़ियम भी है जिसमें अलग से एक जगह ''क़ुरआनी म्युज़ियम'' के नाम से भी है जहाँ हाथ से लिखे हुए बड़े अनमोल क़ुरआन रखे हुए हैं और यह क़ुरआन पिछली दस- ग्यारह सदियों से लेकर अभी तक के हैं। आर्ट व कारीगरी के हिसाब से क़ुरआन के कुछ नुस्ख़े तो इतने ज़बरदस्त हैं कि उनमें से एक-एक की क़ीमत करोड़ों में है। क़ुरआन के इन नुस्ख़ों को किसने लिखा है? इन नुस्ख़ों को लिखने या तैयार करने वाले या तो ईरानी थे या तुर्क, या मुग़ल या अरब और हिन्दुस्तानी। ज़ाहिर है कि इन सब ने यह काम इस्लाम और अपने मुसलमान होने की वजह से किया है यानी इस्लामी सोच ने उन से यह काम कराया है।

कल्चर, सभ्यता और तहज़ीब के हिसाब से इस्लामी कल्चर का कोई जोड़ नहीं है मगर दुख की बात यह है कि हम अपनी इसी सभ्यता व कल्चर को भुलाए बैठे

हैं। हम ने यह एक ऐसा काम कर दिया है कि अगर हम ख़ून के आँसू भी बहाएं तब भी कम है।

अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के मैदान में हम इतने पीछे क्यों हैं? अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर का मतलब एक-दूसरे के साथ हमदर्दी, मेल-मिलाप, एक-दूसरे का ध्यान रखना, एक-दूसरे की पहचान और एक-दूसरे की समझ ही तो है, इससे हटकर और क्या है? जिसने सब से पहले अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर नाम का क़ानून बनाकर भेजा था वह जानता था कि उसका उतारा हुआ दीन निजी ज़िन्दगी का दीन नहीं है बल्कि एक समाजी दीन है। इस्लाम चर्च वाला दीन नहीं है कि सारी दुनिया को छोड़ दो और बस अल्लाह-अल्लाह करते रहो। जो लोग सालों साल से सारी दुनिया को छोड़कर चर्च की अकेलेपन की ज़िन्दगी जीते आए हैं वह भी आज एक-दूसरे के साथ जुड़ रहे हैं, एक-दूसरे के साथ रिश्ते बना रहे हैं और आपस में एकजुट हो रहे हैं। जबकि हमारा तो दीन पहले ही दिन से समाजी दीन रहा है, हम तो एक ऐसे दीन के मानने वाले हैं जो हर पल बस एकता, एकजुटता, मेल-जोल और आपसी मोहब्बत की बात करता है। जब ऐसा है तो फिर हम क्यों अकेले-अकेले और निजी ज़िन्दगी जीने के आदी हो गए हैं? इस्लाम ने हमें अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने का हुक्म दिया है जिसका सीधा सा मतलब बस यही है कि हमारा दीन हम से चाहता है कि हम सब एक ऐसा समाज बनाकर रहें जिसमें हर-हर आदमी समझदार हो बल्कि जो कुछ आने वाले दिनों में होने वाला है उसे भी हमारा समाज हालात को देखकर समझ जाए। इसके उलट हमारा हाल तो यह है कि हम अपने आज को ही नहीं समझ पा रहे हैं, भला आने वाले कल

के बारे में अभी से क्या समझेंगे। इमाम जाफ़र सादिक़[अ०] ने अब से 1300 साल पहले ही यब बात कह दी थीः ''जो आदमी अपने हालात को ठीक से समझ लेता है वह ग़ल्ती नहीं करता।'' इसका मतलब यह है कि जो लोग अपने ज़माने को नहीं समझते, अपने हालात को नहीं जानते और आने वाले वक़्त के बारे में कोई फ़ैसला नहीं कर पाते वह पल-पल ग़ल्तियाँ करते रहते हैं। उनके सारे काम उलटे होते हैं यानी सर दुश्मन का फौड़ना होता है मगर अपना ही फोड़ लेते हैं, दुश्मन की कमर तोड़ने के बजाए अपनी ही कमर तोड़ लेते हैं या दुश्मन को नुक़सान पहुँचाने के बजाए अपने आप को ही नुक़सान पहुँचा लेते हैं। ऐसे लोगों का कुछ नहीं हो सकता और इन्हें कभी कामयाबी नहीं मिल सकती।

हमें क्या करना चाहिए?

अब सवाल यह है कि क्या किया जाए कि हम एक इज़्ज़तदार और मान-सम्मान वाली क़ौम बन जाएं, दुनिया में हमारा नाम भी इज़्ज़त के साथ लिया जाए और हमें कहीं भी धुतकारा न जाए? इस सवाल का जवाब क़ुरआन ने पहले ही दे दिया हैः

> तुम सब से अच्छी उम्मत (क़ौम) हो जिसे लोगों के सामने लाया गया है। तुम लोग अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने वाले हो।[1]

अल्लाह ने साफ़-साफ़ एलान कर दिया है कि अगर सब से अच्छा बनना चाहते हो तो तुम्हें अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करना होगा यानी अगर कोई अल्लाह और उसके रसूल[स०] के दिल में अपनी जगह

---

[1] सूरए आले इमरान/110

बनाना चाहता है तो उसे इस्लाम के इस मज़बूत क़ानून पर चलना होगा। इसी तरह अगर हम चाहते हैं कि अपने फ़ैसले हम ख़ुद लें, न कि दुनिया की दूसरी बड़ी ताक़तें व हुकूमतें तो इसके लिए भी हमें अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करना होगा। यह बात हम पहले ही समझ चुके हैं कि हमें अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करना होगा यानी हमें एक-दूसरे के साथ हमदर्दी करना होगी, एक-दूसरे का ध्यान रखना होगा, इस्लामी ब्रादरी को सजोए रखना होगा, गहरी नींद से जागना होगा, किसी भी तरह की कमज़ोरी से दूर रहना होगा और इस्लामी एकता का झंडा लहराना होगा। यह सारी वह बातें हैं जो दुश्मन ने हमारे अंदर से निकाल दी हैं और वह कभी नहीं चाहता कि हमारे अंदर यह सारी बातें पैदा हों।

अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर वह फ़ैक्टर है जो करबला की क्रांति में ख़ूब चमकता-दमकता दिखाई पड़ता है। यही वह फ़ैक्टर है जिसे इमाम हुसैन[अ०] ने ज़मीन से उठाकर आसमान की ऊँचाईयों पर पहुँचा दिया था और ऐसा इमाम हुसैन[अ०] ने इसलिए किया था क्योंकि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर एक ऐसा क़ानून है जिसे इस्लाम ने बहुत बड़ा दर्जा दिया है। यह क़ानून इस्लाम की जान है। अगर अम्र और नही को बीच से हटा दिया जाए तो इस्लाम के दूसरे क़ानून हमारे किसी काम नहीं आ सकते।

यह सारी बातें ठीक हैं लेकिन फिर वही सवाल है कि हम क्या करें और हमारी इस्लामी ड्युटी क्या है? क्या अब तक जो कुछ हो चुका है बस उसी पर बात करते रहें? या इससे आगे बढ़कर अपने बीते हुए कल और आने वाले कल को एक दूसरे से जोड़ने की कोशिश करें?

हुसैनी क्रांति हम से यही कह रही है कि हमें इस दूसरी वाली बात को ही चुनना है और इसी रास्ते पर चलना है। ऐसा बस तभी हो पाएगा जब हम अपने समाज का पूरा-पूरा ध्यान रखेंगे यानी हमें एक-दूसरे का ध्यान रखना होगा, एक-दूसरे की मदद करना होगी और एक-दूसरे को सही रास्ते पर लाना होगा। हमें यह भी देखना होगा कि जो किताबें हमारे बीच छप रही हैं उन में क्या लिखा जा रहा है और क्या लिखा जाना चाहिए? दीन की तबलीग़ कैसे की जा रही है? हमें और हमारे समाज को किस लाइन पर सोचना चाहिए और अपनी सोच को किस धारे पर लगाना चाहिए? अगर हमें इस मैदान में आगे बढ़ना है तो फिर यह भी देखना होगा कि हज़रत अली[अ०] और इमाम हुसैन[अ०] किन-किन बातों और किन-किन चीज़ों का ध्यान रखते थे और किन बातों पर ज़ोर देते थे? हमें भी उन्हीं बातों का ध्यान रखना होगा। अगर वह कुछ दूसरी चीज़ों पर ज़ोर देते थे और हम लोग दूसरी चीज़ों पर तो हमें यह भी देखना होगा कि ऐसा क्यों हो रहा है? जब हम इन सारी बातों को समझ जाएंगे तो यह भी समझ जाएंगे कि हमें अपना पैसा कहाँ-कहाँ और किन-किन चीज़ों पर लगाना है। क्या हम कभी सोचते हैं कि अल्लाह के नाम पर और उसके रास्ते में जो पैसा हम ख़र्च करते हैं, वह पैसा ठीक जगह पर लग भी रहा है या नहीं? अल्लाह की क़सम! मुझे इस बात से बहुत डर लगता है कि जितना नुक़सान हमें या इस्लाम को अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर न करने से होता उससे कहीं बढ़कर नुक़सान जिहालत भरे रास्ते से किए गए अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर से हो रहा है।

मुझे नहीं पता कि जो इस्लामी किताबें हमारे यहाँ छप रही हैं उन से हमें फ़ाएदा ज़्यादा हो रहा है या नुक़सान? इसी तरह मैं अभी यह भी नहीं बता सकता कि इस्लाम के नाम पर या अल्लाह के रास्ते में जो पैसा ख़र्च हो रहा है वह इस्लाम की भलाई में हो रहा है या घाटे में क्योंकि क़ुरआन ने साफ़-साफ़ कह दिया है:

> जो लोग अल्लाह के रास्ते में अपना माल ख़र्च करते हैं उनके इस काम की मिसाल उस दाने के जैसी है जिससे सात बालियाँ उगती हों। फिर हर बाली में सौ-सौ दाने हों और अल्लाह जिसके लिए चाहता है बढ़ा भी देता है।[1]

इस आयत में अल्लाह गेंहूँ की सात ऐसी बालियों की बात कर रहा है जिनसे सौ-सौ दाने उगते हों बल्कि इससे भी ज़्यादा की बात कर रहा है यानी अल्लाह के लिए ख़र्च होने वाला कुछ माल बड़ी बरकतों वाला होता है लेकिन इसके उलट एक दूसरी आयत में अल्लाह ने एक दूसरी मिसाल भी दी है कि कुछ माल ऐसे भी ख़र्च होता है कि उससे ज़हरीली हवा चलती है जो सब कुछ बर्बाद करके रख देती है यानी जो कुछ किया-धरा होता है वह भी बेकार हो जाता है:

> यह लोग अपनी ज़िन्दगी में जो कुछ ख़र्च करते हैं उसकी मिसाल उस हवा की है जिसमें बड़ा पाला हो और वह उस क़ौम के खेतों पर गिर पड़े जिसने अपने ऊपर ज़ुल्म किया है और उसे बर्बाद कर दे और यह ज़ुल्म उन लोगों पर अल्लाह ने नहीं किया है बल्कि यह लोग ख़ुद अपने ऊपर ज़ुल्म करते हैं।[2]

---

[1] सूरए बक़रा/261

[2] सूरए आले इमरान/117

फ़िलिस्तीन इश्यु

अगर हम अल्लाह और उसके रसूल[स०] की नज़र में अच्छा बनना चाहते हैं, अगर हम दुनिया में अपना नाम कमाना चाहते हैं और अगर इज़्ज़त (सम्मान) पाना चाहते हैं तो हमें इस इस्लामी क़ानून पर चलना होगा। यही एक रास्ता है और इससे हटकर दूसरा कोई रास्ता नहीं है। अगर आज रसूले इस्लाम[स०] हमारे बीच में होते तो क्या करते? किस इश्यु पर सब से पहले ध्यान देते? मैं अल्लाह की क़सम खाकर कह सकता हूँ कि अपनी क़ब्र के अंदर आज अल्लाह के रसूल[स०] सब से बढ़कर यहूदियों से नाराज़ हैं। यह मामला दो और दो चार की तरह है। अगर कोई इस मामले में कुछ न बोले तो वह गुनाह कर रहा है। मैं भी अगर इस मामले में अपनी ज़बान न खोलूँ तो मैं भी गुनाह करूँगा। कोई भी ज़ाकिर हो अगर वह इस इश्यु पर चुप है तो वह गुनाह कर रहा है।

अगर इस्लाम को बीच से हटा लिया जाए तो फ़िलिस्तीन के इतिहास में क्या बचेगा? फ़िलिस्तीन इश्यु किसी एक इस्लामी हुकूमत जैसा मामला नहीं है बल्कि यह एक क़ौम से जुड़ा हुआ मामला है, एक ऐसी क़ौम जिसे ख़ुद उसी के घर से निकाल कर बेघर कर दिया गया है। फ़िलिस्तीन का इतिहास क्या है? कहा जाता है कि हज़रत सुलेमान[अ०] और हज़रत दाऊद[अ०] ने कुछ वक़्त के लिए हुकूमत की थी। इतिहास को उठाकर पढ़िए तो अपने आप यह बात समझ में आ जाएगी कि पिछले दो-तीन हज़ार सालों में कभी ऐसा नहीं हुआ है कि फ़िलिस्तीन यहूदियों की जगह रही हो। फ़िलिस्तीन कभी यहूदियों का मुल्क नहीं रहा है? न ही इस्लाम से पहले ऐसा कभी हुआ है और न इस्लाम के आने के

बाद। जब फ़िलिस्तीन मुसलमानों के हाथ में आया था उस वक़्त यह यहूदियों के पास था ही नहीं बल्कि यह तो ईसाईयों के हाथ में था। मज़े की बात तो यह है कि मुसलमानों और ईसाईयों के बीच जो एग्रीमेंट हुआ था उस में एक शर्त यह भी थी कि ईसाईयों ने मुसलमानों से कहा था कि आप लोग यहाँ यहूदियों को कभी नहीं बसने देंगे। ईसाईयों का कहना था कि हम मुसलमानों के साथ तो रह सकते हैं मगर इन यहूदियों के साथ नहीं रह सकते। फिर यह अचानक क्या हो गया कि फ़िलिस्तीन के साथ यहूदियों का नाम जुड़ गया और इसे उनकी ज़मीन कहा जाने लगा? हमारी इस शताब्दी को मानवाधिकार, आज़ादी और मानवता की शताब्दी कहा जाता है जो सिरे से ग़लत व झूठ है क्योंकि ऐसा है ही नहीं। फ़िलिस्तीन इश्यु हमारी इस शताब्दी के ऊपर एक कलंक है।

इतिहास यह है कि रूस, जर्मनी और दुनिया के दूसरों मुल्कों में रहने वाले यहूदियों पर अत्याचार हो रहा था। वैसे यह ध्यान रहे कि उनके ऊपर यह अत्याचार मुसलमानों के हाथों नहीं हो रहा था बल्कि दूसरी क़ौमें कर रही थीं। बहरहाल उनके बड़ों ने बैठकर आपस में मिटिंग की और यह तय पाया कि जब तक हम लोग दुनिया भर में तितर-बितर रहेंगे और अल्पसंख्या में रहेंगे तब तक हमारे साथ ऐसा ही होता रहेगा। इसलिए हमें अपने लिए एक ऐसी जगह ढूँढना होगी जहाँ सारी दुनिया के यहूदी एक साथ रह सकें। यह लोग मीटिंगों पर मीटिंगें करते रहे और अपने लिए कोई ठीक सी जगह ढूँढते रहे। इस बीच पहली वर्ल्ड-वॉर हो गई। इंग्लैंड ने पहले से ही इन यहुदियों से वादा कर रखा था कि जंग के बाद मुस्लिम मुल्कों के बीचोंबीच फ़िलिस्तीन की ज़मीनें उन्हें दे दी जाएंगी। इस

जंग में उस वक़्त की मुसलमानों की सब से बड़ी हुकूमत यानी उस्मानी हुकूमत बिखर गई थी और बिल्कुल मिट गई थी। जंग के बाद यूएनओ बनाया गया। यूएनओ ने फ़ैसला सुना दिया कि दुनिया भर में बहुत सारी अल्पसंख्यक क़ौमें रहती हैं और यह सारी क़ौमें पिछड़ी हुई हैं इसलिए हमारी ड्युटी है कि हम सब मिलकर इनकी तरक़्क़ी के लिए कुछ काम करें। असल में यह फ़ैसला उस्मानी हुकूमत के टूटने के बाद हाथ आए मुल्कों का बंदर-बांट करने के लिए किया गया था। टूटी हुई उस्मानी हुकूमत का कुछ हिस्सा फ़्रांस को मिल गया था, कुछ इंग्लैंड को और कुछ दूसरे मुल्कों को। इंग्लैंड के हाथ में जो जगहें आई थीं उनमें से एक फ़िलिस्तीन भी था। दुनिया भर के यहूदियों की ठेकीदारी इंग्लेंड ने ले ली थी और अपने वादे को पूरा करते हुए फ़िलिस्तीन की सारी ज़मीनें यहूदियों को दे दी थीं।

अब जिन यहूदियों को दुनिया भर से उठा-उठाकर फ़िलिस्तीन में लाया जा रहा था वह भी एक अलग कहानी है। यह सारे यहूदी ज़ियानिस्ट (Zionist) थे और ज़ियानिज़्म (Zionism) को मानने वाले थे। असल में यह वह यहूदी थे जो दूसरी नस्लों से थे यानी यह सब बनी इस्राईल की नस्ल से नहीं थे। पहले मैं भी यही समझता था कि दुनिया के सारे यहूदी बनी इस्राईल की नस्ल से हैं लेकिन बाद में इतिहास ने बताया कि ऐसा बिल्कुल नहीं है और यह बात सिरे से झूठ है क्योंकि बहुत सारे यहूदी बनी इस्राईल की नस्ल से हैं ही नहीं। इन यहूदियों और बनी इस्राईल की नस्ल वाले यहूदियों को जो चीज़ एक दूसरे से जोड़ती है वह बस उनका धर्म है यानी यहूदी धर्म, वरना इनकी नस्लें बिल्कुल अलग-अलग हैं। दुनिया भर से जिन यहूदियों को फ़िलिस्तीन में लाकर बसाया गया यह वह लोग थे

जिनके ऊपर अंग्रेज़ों ने बहुत अत्याचार किए थे और इसीलिए यह लोग चाहते थे कि किसी ऐसी जगह पर चलकर रहा जाए जहाँ सारे यहूदी एक जगह इकट्ठे होकर रहें। यह वह लोग थे जिनके अंदर ईमानदारी नाम को भी नहीं थी और जिनकी धार्मिक किताब में लिखा था कि चाहे किसी भी ज़मीन पर चले जाओ, तुम्हारे अंदर रहम और हमदर्दी बिल्कुल नहीं होना चाहिए। उनकी किताब में यह भी लिखा हुआ है कि अपनी तरक़्क़ी और कामयाबी के लिए कोई भी काम या कोई भी रास्ता मत छोड़ना। बाद में जब इंग्लैंड ने इन लोगों के लिए फ़िलिस्तीन में जाकर बस जाने का रास्ता साफ़ कर दिया तो इन्होंने एक-एक करके वहाँ की सारी ज़मीनें ख़रीद लीं। उधर फ़िलिस्तीन में पुरखों के साथ रहते आए सारे यहूदी कुल मिलाकर पचास हज़ार बनते थे और यह यहूदी आज भी वहाँ बड़ी बुरी ज़िन्दगी जी रहे हैं यानी युरोपी और अमेरिकी यहूदियों ने फ़िलिस्तीन में जो उधम मचाया उसमें से एक यह है कि इन्होंने वहाँ हज़ारों साल से रहते आए यहूदियों का जीना दूभर कर दिया है जबकि अपनी ज़मीनों पर आज़ादी के साथ रहना उनका अपना अधिकार था।

अरबों में बहरहाल कुछ ऐसे लोग सामने आए जिन्होंने आन्दोलन व क्रांति छेड़ी और अपनी आवाज़ उठाई मगर उन सब को जान से मार दिया गया, फांसी पर लटका दिया गया या गोली मार दी गई। जब वहाँ आकर बसने वाले यहूदियों की तादाद बढ़ गई तो हथियारों की सप्लाई भी शुरू हो गई जिसके बाद यह सब मिलकर वहाँ सालों साल से रहते आए मुसलमानों की जान के दुश्मन हो गए। गाँव के गाँव और शहर के शहर उजाड़ दिए और सब को मारकर बचे हुए लोगों को घर से बेघर कर दिया। एक के बाद एक युरोप के

अलग-अलग देशों से यहूदी आते रहे और फ़िलिस्तीन में बसते रहे और फिर दुनिया ने वह दिन भी देखा जब इन लोगों ने यह एलान भी कर दिया कि यह देश तो हमारा है। फ़िलिस्तीन हमारी ज़मीन है और हम ही इसके मालिक हैं। आज लगभग तीस लाख मुसलमान बेघर हो चुके हैं और बड़ी बुरी ज़िन्दगी जी रहे हैं। क्या यह सारा बखेड़ा बस इसलिए फैलाया गया है कि इन्हें अपने लिए एक छोटा सा देश और एक छोटी सी हुकूमत चाहिए थी? नहीं! ऐसा बिल्कुल नहीं है और अगर कोई ऐसा सोचता है तो बिल्कुल ग़लत सोचता है। उन्हें एक ऐसी हुकूमत चाहिए जिसका कोई ओर-छोर न हो। दूर-दूर तक फैली हुई एक ऐसी हुकूमत जिसमें ईरान, ईराक़ और सऊदी अरब जैसे सारे मुस्लिम देश समा जाएं।

अल्लाह की क़सम! अल्लाह की क़सम! इस पूरे मामले में हमारी भी कुछ इस्लामी ड्युटी बनती है। अल्लाह की क़सम! हमारी भी ज़िम्मेदारी बनती है। अल्लाह की क़सम! हम सब बड़ी गहरी नींद में सोए हुए हैं। अल्लाह की क़सम! जिस बात से आज अल्लाह के रसूल[स०] का दिल चूर-चूर है वह यही इश्यु है। जिस बात ने इमाम हुसैन[अ०] का दिल दुखा रखा है वह यही मामला है।

इमाम हुसैन[अ०] के दिल का सुकून

आशूरा वह दिन है जिस दिन इमाम हुसैन[अ०] का असली रूप पूरी तरह से खुलकर सामने आ गया था। आशूरा इमाम हुसैन[अ०] की ऊँचाईयों का दिन है। आशूरा वह दिन है जिस दिन हमें इमाम हुसैन[अ०] से इज़्ज़त और बहादुरी की सीख लेना चाहिए, दुश्मन के मुक़ाबले में डटे

रहने का तरीक़ा सीखना चाहिए और इमाम हुसैन[अ०] की सोच को अपने अंदर उतारना चाहिए ताकि थोड़ा-बहुत हम भी आदमी बन सकें और अपनी आँखें खुली रख सकें। एक बहुत मशहूर अरब लेखक अब्बास महमूद अक़्क़ाद ने इमाम हुसैन[अ०] के बारे में लिखा है कि आशूरा वह दिन है जब हुसैन बिन अली[अ०] के अंदर पाई जाने वाली सिफ़तों (Qualities) के बीच एक तरह का मुक़ाबला हो रहा था और हर सिफ़त दूसरी सिफ़त से आगे निकल जाना चाहती थी। हुसैन[अ०] का सब्र दूसरी हर सिफ़त से आगे निकल जाना चाहता था, हुसैन[अ०] की रिज़ा (मर्ज़ी) अल्लाह की रिज़ा पाने के लिए दूसरी हर सिफ़त को पीछे छोड़ देना चाहती थी, हुसैन[अ०] का ख़ुलूस दूसरी हर सिफ़त को अपने अंदर छुपा लेना चाहता था, हुसैन[अ०] की शुजाअत (बहादुरी) सब को पीछे छोड़कर आसमान की ऊँचाईयों को छू लेना चाहती थी यानी इमाम हुसैन[अ०] की हर सिफ़त पूरी तरह से खुलकर सामने आ गई थी। वैसे इन सारी सिफ़तों में जो सिफ़त सब से आगे-आगे थी और जो दूसरी हर सिफ़त पर छा गई थी वह हुसैन[अ०] का सब्र व इत्मिनान (सुकून) था। हुसैन[अ०] का दिल कितना मज़बूत था यह हमें आशूरा के दिन देखने को मिलता है और यह बात ख़ुद उन लोगों ने कही है जो उस दिन करबला में मौजूद थे। करबला में ऐसे लोग भी थे जो वहाँ होने वाली पल-पल की बातें लिख रहे थे। उन्हीं में से एक आदमी ने लिखा है कि अल्लाह की क़सम! मैंने अपनी पूरी ज़िन्दगी में ऐसा एक भी आदमी नहीं देखा जिसका दिल टुकड़े-टुकड़े हो चुका हो, जिसके सामने उसके बच्चों का ख़ून बहा दिया गया हो और साथियों के सर उसकी आँखों के सामने ही काट

दिए गए हों मगर इसके बाद भी उसका दिल इतनी मज़बूती से धड़क रहा हो।[1]

यह कोई छोटी-मोटी बात नहीं है। इन्सान आशूरा के दिन इमाम हुसैन[अ०] को देखता है तो दाँतों तले अपनी उंगली दबा लेता है क्योंकि उस दिन इमाम हुसैन[अ०] का एक-एक क़दम कुछ ऐसे उठ रहा था जैसे अपने जगमगाते कल और अपने मिशन की कामयाबी को ख़ुद अपनी आँखों से देख रहे हों। इमाम हुसैन[अ०] को इस बात का पूरा-पूरा भरोसा था कि उनके ख़ून से ही उनकी कामयाबी लिखी जाएगी। इमाम हुसैन[अ०] को एक पल के लिए भी इस बात में कोई शक नहीं था कि यह आशूरा है और आज अपना सब कुछ अल्लाह के लिए लुटा देना है यानी अब इसके बाद अपने मिशन की फ़सल काटने का वक़्त आ गया है और फिर ऐसा ही हुआ क्योंकि इधर हुसैन[अ०] का ख़ून बहा और उधर हुकमूती मशीनरी को पलटने के लिए सारे इस्लामी समाज में एक भोंचाल सा आ गया था। सब से पहले जिसने यह काम किया वह दुश्मन के एक सिपाही की बीवी थी। उस औरत ने जब ढलते हुए आशूर के दिन के आख़िरी पलों में देखा कि दुश्मन अब इमाम हुसैन[अ०] के ख़ेमों पर हमला बोलना चाहता है तो वह दौड़ पड़ी और जल्दी से अपने हाथ में ख़ेमों की एक छड़ उठाकर खेमों के सामने डट गई और उसके बाद बक्र बिन वायल क़बीले वालों को पुकार कर चीख़ी कि ऐ मेरे क़बीले वालो! तुम कहाँ हो? जल्दी से यहाँ आ जाओ! देखो कि अब बात कहाँ तक पहुँच गई है, यह ज़ालिम अब अल्लाह के रसूल[स०] के घर वालों की चादरें भी लूटना चाहते हैं।

---

[1] अल-लहूफ़/50

(7)

करबला के बाद

अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर का असर

अब तक की बातों से हम यह अच्छी तरह से समझ गए हैं कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर को समाज में फैलाना बहुत ज़रूरी है क्योंकि यही एक वह क़ानून है जिसे फैलाकर हम अपने आप को बचा भी सकते हैं और बाक़ी भी रख सकते हैं।

हज़रत अली[अ०] ने तक़वा के बारे में फ़रमाया हैः

> तुम तक़वा को बचाओ और तक़वा तुम्हें बचाएगा।

दिखने में यह बात बड़ी अजीब सी लगती है क्योंकि यह भला कैसे हो सकता है कि हम तक़वा को बचाएं और तक़वा हमें बचाए? इसका सीधा सा जवाब यह है कि बिल्कुल ऐसा हो सकता है क्योंकि हमारा तक़वा को

बचाना एक अलग तरह से है और तक़वा का हमें बचाना एक अलग मायनी में है।

अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के मामले में भी ऐसा ही है। अगर हम इस इस्लामी क़ानून को बचाएंगे तो यह हमें बचाएगा।

अभी तक हम ने हुसैनी क्रांति को सामने रखकर अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के बारे में बस इतनी बात की है कि इस फ़ैक्टर का इस क्रांति के अंदर क्या रोल रहा है लेकिन इससे हटकर एक चीज़ और भी है जिस पर अभी हम ने बात नहीं की है और वह यह है कि इस क्रांति में अमली तौर पर (Practically) कितना अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर किया गया है?

इमाम हुसैन[अ०] अपनी इस क्रांति में एक ऐसे इन्सान बनकर उभरे हैं जो हर जगह और हर पल अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर कर रहे थे। इतना ही नहीं बल्कि इमाम हुसैन[अ०] की शहादत के बाद इमाम के घर वालों ने भी आशूरा के बाद ग्यारह मोहर्रम से या बहुत से बहुत बारह मोहर्रम से अपना मिशन शुरू कर दिया था। इसके बाद यह लोग जहाँ भी ले जाए गए वहाँ-वहाँ इन सब ने अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर किया। इमाम हुसैन[अ०] के घर वालों को देखकर कहीं से कहीं तक यह लगता ही नहीं था कि यह हारे हुए लोग हैं बल्कि उन सब के चेहरों और उनके हाव-भाव से जीत का नूर फूट रहा था। इमाम हुसैन[अ०] की तरह यह लोग भी अपने मरने या जीने को अपने मिशन की हार या जीत नहीं समझते थे कि कहीं बाद में आने वाले लोग इतिहास में यह न लिख दें कि अगर हुसैन[अ०] बच जाते तो उन्हें हुकूमत मिल जाती या कम से कम किसी कोने में ही बैठकर अपनी बची हुई

ज़िन्दगी बिता देते लेकिन क्योंकि शहीद कर दिए गए इसलिए काम ही ख़त्म। इमाम हुसैन[अ०] के घर वाले इस तरह से बिल्कुल नहीं सोच रहे थे बल्कि उन सब ने अपनी सारी ताक़त हुसैनी मिशन को बचाने और आगे बढ़ाने में लगा दी थी। ध्यान से देखा जाए तो इमाम हुसैन[अ०] की शहादत के बाद एक तरह से अब उन लोगों का काम शुरू हुआ था और उन्हें मिलकर यह काम पूरा करना था। आशूरा में इमाम हुसैन[अ०] के बचे रह गए घर वालों ने जिस तरह से दुश्मन का सामना किया है वह सच में एक बड़ी अनोखी कहानी है जो हर आदमी को अपनी ओर खींच लेती है। करबला के बाद बचे रह जाने वालों का सब्र, ईमान, ताक़त, बहादुरी और अल्लाह पर भरोसा कुछ ऐसा ही था कि हर आदमी जब यह सारी बातें सुनता है तो इ़ज़्ज़त के साथ अपना सर झुका देता है। करबला के बाद हर-हर जगह और हर पल इन लोगों ने अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर किया था और लोगों को इस्लाम की तरफ़ बुलाया था। शाम एक ऐसी जगह थी जहाँ हज़रत अली[अ०] और रसूल के अहलेबैत[अ०] के लिए मोहब्बत बिल्कुल नहीं पाई जाती थी क्योंकि वहाँ लोग हज़रत अली[अ०] और उनके घर वालों को पहचानते ही नहीं थे और अगर पहचानते भी थे तो उस तरह से पहचानते थे जिस तरह से उन्हें बताया गया था यानी वहाँ हर जगह हज़रत अली[अ०] की दुश्मनी ही दुश्मनी थी लेकिन देखने और समझने की बात यह है कि करबला के बाद वही शाम पूरी तरह से बदल गया था।

आइए! देखते हैं कि अहलेबैत[अ०] ने शाम को कितना बदल दिया था। इसका एक नमूना यह है।

जनाबे ज़ैनब[अ०] का शाही दरबार में जाना

आशूरा का दिन ढलने के बाद अहले हरम ने पूरी रात करबला के खुले आसमान के नीचे बिताई थी। ग्यारह मोहर्रम को इब्ने ज़ियाद के जल्लाद आए और सब को नंगी पीठ ऊँटों पर बिठाकर चल दिए। भयानक जिस्मानी व ज़ेहनी तकलीफ़ के साथ पूरे दिन और पूरी रात यह कारवाँ चलता रहा। बारह मोहर्रम की सुबह हुई तो कूफ़े का दरवाज़ा बहुत पास आ पहुँचा था लेकिन दुश्मन किसी भी तरह की छूट देने को तैयार नहीं था। उसी दिन दोपहर से पहले-पहले अहले हरम को कूफ़ा शहर के अंदर ले गए। इब्ने ज़ियाद अपने दरबार में बैठा हुआ था और उसके सामने कुछ ऐसे क़ैदी लाए गए थे जिनमें बस एक मर्द था और बाक़ी सब औरतें। मर्द भी ऐसा जो उस वक़्त बीमार था। इमाम सज्जाद[अ०] को बीमार कहने का चलन बस हमारे ही बीच में है और पता नहीं कि ऐसा क्या हुआ है कि हम इमाम सज्जाद[अ०] को बीमार कहकर पुकारने लगे हैंः आबिदे बीमार, लेकिन अरब जगत में कहीं भी इमाम सज्जाद[अ०] को बीमार कहकर पुकारने का चलन नहीं है। यह वह नाम है जो हम ने इमाम सज्जाद[अ०] को दिया है। वैसे इस की असलियत बस इतनी ही है कि करबला में इमाम सज्जाद[अ०] बहुत बीमार हो गए थे और अपनी उम्र में हर आदमी बीमार होता है। ऐसा कौन है जो अपनी पूरी उम्र में कभी बीमार ही न पड़े? इमाम सज्जाद[अ०] इतने बीमार थे कि बस बिस्तर के हो गए थे और बड़ी दिक़्क़त से हिल-डुल पा रहे थे। न अपने आप से खड़े होने की ताक़त थी और न छड़ी के सहारे के बिना चलने की ताक़त। यह था इमाम सज्जाद[अ०] की बीमारी का हाल और इसी हालत में इमाम को क़ैदी बना लिया

गया था। इमाम सज्जाद[अ०] को उन जल्लादों ने एक ऐसे ऊँट पर बिठा दिया था जिस पर लकड़ियों से बनी काठी तो थी लेकिन उस काठी के ऊपर कपड़े के नाम पर कुछ भी नहीं था। इमाम सज्जाद[अ०] बहुत बीमार थे इसलिए उन लोगों को लग रहा था कि कहीं ऐसा न हो कि इमाम अपने आप को संभाल न पाएं, इसलिए इमाम के दोनों पैरों को जकड़ कर ऊँट से बांध दिया था। इतना ही नहीं बल्कि इमाम सज्जाद[अ०] के गले में तौक़ भी डाल दिया था। इसी हालत में इस कारवाँ को कूफ़े के अंदर ले जाया गया था यानी वह लोग जितनी तकलीफ़ें दे सकते थे दे रहे थे। दुनिया वाले आम तौर पर ऐसा ही करते हैं कि जब किसी से कुछ उगलवाना होना होता है या उसकी हिम्मतों को तोड़ना होता है तो साइकॉलोजिकल टार्चर करते हैं जैसे 24 घंटे या 48 घंटे उसका खाना-पानी बंद कर देते हैं या कई-कई दिन तक सोने नहीं देते और इसी जैसे दूसरे काम करते हैं। इन हालात में ज़्यादातर लोग हार मान लेते हैं और कह देते हैं कि जो कुछ पूछना हो पूछ लो। अब देखिए उधर इब्ने ज़ियाद के दरबार में क्या हो रहा है। आशूर का दिन ढलने के बाद से लेकर अब तक इब्ने ज़ियाद के आदमी जितना ज़ुल्म कर सकते थे कर चुके थे और जितनी साइकॉलोजिकल या जिस्मानी तकलीफ़ें पहुँचा सकते थे पहुँचा चुके थे। बारह मोहर्रम को अहले हरम को इब्ने ज़ियाद के दरबार में लाया गया जिनमें जनाबे ज़ैनब[स०] भी थीं। ज़ैनब[स०] हज़रत अली[अ०] की उस बेटी का नाम है जिसका दर्जा बहुत ऊँचा और जिसकी इज़्ज़त बहुत ज़्यादा थी। किताबों में लिखा है कि जब दूसरी औरतों के साथ जनाबे ज़ैनब[स०] को भी इब्ने ज़ियाद के दरबार में लाया गया तो औरतों ने जनाबे ज़ैनब[स०] को चारों तरफ़ से अपने घेरे में ले रखा था। जनाबे ज़ैनब[स०]

को इसी हालत में इब्ने ज़ियाद के दरबार में लाया गया था। जनाबे ज़ैनब[स०] आईं लेकिन सलाम नहीं किया और न ही इब्ने ज़ियाद की तरफ़ कोई ध्यान दिया। इब्ने ज़ियाद ने जनाबे ज़ैनब[स०] के अंदर यह एहसास देखा तो वह समझ गया कि जनाबे ज़ैनब[स०] उसे नीच और गिरा हुआ आदमी समझ रही हैं जिससे वह अंदर ही अंदर खौल गया। जनाबे ज़ैनब[स०] के सलाम न करने का मतलब यह था कि अभी हमारी हिम्मतें टूटी नहीं हैं और अभी भी हम तुम लोगों को कुछ नहीं समझते हैं। अभी भी जनाबे ज़ैनब[स०] के अंदर से इमाम हुसैन[अ०] की आवाज़ आ रही थी कि हम ज़िल्लत (नीचता) के आसपास फटक भी नहीं सकते। जैसे अभी भी इमाम हुसैन[अ०] कह रहे हों कि मैं अपना हाथ तुम्हारे नीच हाथ में नहीं दे सकता। इब्ने ज़ियाद से जनाबे ज़ैनब[स०] का यह रूप नहीं देखा जा रहा था और वह बुरी तरह से सटपटा रहा था। वह भी समझ गया था कि यह किसकी बेटी है। उसे पहले ही सब के बारे में बता दिया गया था। वह समझ गया था कि औरतों में जनाबे ज़ैनब[स०] की इज़्ज़त ही सब से बढ़कर है और इसीलिए दूसरी औरतों ने उनको अपने घेरे में ले रखा है। वह समझ गया था कि यह हज़रत अली[अ०] की बेटी ज़ैनब[स०] है मगर फिर भी उसने पूछा कि यह घमंडी औरत कौन है? यह औरत कौन है जो मुझे पहचानती भी नहीं है? कोई कुछ नहीं बोला। उसने फिर वही सवाल पूछा क्योंकि वह चाह रहा था कि उन्हीं में से कोई जवाब दे। दूसरी बार, तीसरी बार और फिर आख़िर में एक औरत ने जवाब दिया कि यह हज़रत अली इब्ने अबी तालिब[अ०] की बेटी जनाबे ज़ैनब[स०] हैं। इब्ने ज़ियाद बड़ा ही नीच, घटिया और घमंडी आदमी था। उस औरत का जवाब सुनते ही वह अपनी ज़हरीली ज़बान से ज़हरीले तीर

चलाता हुआ बोलाः अल्लाह का शुक्र है कि उसने तुम लोगों को नीचा दिखाया और तुम्हारा झूठ सब के सामने खुलकर आ गया। मगर अली[अ०] की बेटी ज़ैनब[स०] ने उसे बड़ा ही मुँहतोड़ जवाब दियाः अल्लाह का शुक्र है कि उसने हमारे सरों पर शहादत का ताज रखा है। अल्लाह का शुक्र है कि उसने मेरे भाई को शहादत का दर्जा दिया है। अल्लाह का शुक्र है कि उसने हमें रिसालत के घराने में पैदा किया है। फिर आख़िर में फ़रमाया कि नीचता फ़ासिक़ों[1] को मिलती है और झूठ फ़ाजिरों[2] की पहचान है। हम न फ़ासिक़ हैं और न फ़ाजिर। यानी नीच भी तू ही है और झूठा भी तू ही है।

इतनी बहादुरी, इतनी ताक़त और इतना ईमान! यह है अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर। जबकि जो कुछ ऊपर कहा है वह तो बस एक इशारा है वरना यह कहानी तो बहुत लम्बी है। इमाम ज़ैनुल आबेदीन[अ०] ने क्या कहा? इमाम हुसैन[अ०] की बेटी ने क्या कहा? कूफ़े के बाज़ार में जनाबे ज़ैनब[स०] ने क्या ख़ुतबा दिया था? इमाम ज़ैनुल आबेदीन[अ०] ने कैसे-कैसे ख़ुतबे दिए थे? कूफ़े और शाम के रास्ते में क्या-क्या हुआ और क्या-क्या कहा गया? रास्ते में मिलने वाले लोगों से क्या कहा? और इन सारी बातों से बढ़कर जनाबे ज़ैनब[स०] का वह ख़ुतबा है जो आपने यज़ीद बिन मुआविया के दरबार में दिया था। जब यह क़ाफ़िला यज़ीद के दरबार में पहुँचा था तो अब यह चौबीस घंटे या अड़तालीस घंटे की बात नहीं थी बल्कि एक महीना बीत चुका था और अली[अ०] की बेटी ज़ैनब[स०] अभी तक उनकी क़ैद में थी और जितना भी तकलीफ़ें दी जा सकती थीं वह सब दी जा चुकी थीं लेकिन देखिए! यज़ीद के दरबार में अली[अ०]

---

[1] फ़ासिक़ यानी खुले आम गुनाह करने वाला
[2] फ़ाजिर यानी गुनाहों को फैलाने वाला

की बेटी ज़ैनब[स०] ने क्या क़यामत का ख़ुतबा दिया था कि सारा दरबार हिल गया था।

इसलिए जब भी हम हुसैनी क्रांति पर बात करें तो हमें यह भी ध्यान में रखना होगा कि यह क्रांति अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर का नारा लेकर आगे बढ़ी थी और यह नारा बस एक नारा नहीं था बल्कि जिस तरह से भी हो सकता था करबला वालों ने अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर किया था।

असर होने की उम्मीद

उलमा ने अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के बारे में दो बातें और कहीं हैं जिन पर ध्यान देना भी बहुत ज़रूरी है। पहली बात तो यह है कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर उस जगह करना चाहिए जहाँ आदमी को इस बात की उम्मीद हो कि उसके अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने से सामने वाले पर असर होगा। असल में अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर इस्लाम की दूसरी इबादतों जैसे नमाज़-रोज़ा वग़ैरा की तरह नहीं है कि बस अल्लाह का हुक्म मानकर करना है। नमाज़ या रोज़ा जैसी इबादतों का फ़ाएदा हमें पता हो या न पता हो, हर हाल में हमें यह इबादतें करना हैं। वैसे इन इबादतों का भी अपना-अपना फ़ाएदा है जो अल्लाह जानता है और हमारे ऊपर वाजिब भी नहीं है कि हम इन फ़ाएदों को जानें यानी ऐसा नहीं है कि अगर नमाज़-रोज़े का असर हो रहा है तो हमें यह इबादतें करना हैं और अगर असर नहीं हो रहा है तो नहीं करना है। ऐसा बिल्कुल नहीं है बल्कि अल्लाह ने हमें हुक्म दिया है कि तुम्हें हर हाल में नमाज़ पढ़ना है। यह हमारा काम ही नहीं है कि

हम देखने बैठ जाएं कि असर हो रहा है या नहीं क्योंकि हम इस चीज़ का हिसाब लगा ही नहीं सकते। हमें बस नमाज़ पढ़ना है। अब इस नमाज़ का क्या होगा या क्या नहीं होगा यह हमारे कंट्रोल में है ही नहीं लेकिन अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर का मामला ऐसा नहीं है। यह एक ऐसी इबादत है जिसे आदमी अपनी अक़्ल से सोच-समझकर पूरा करेगा यानी हमें देखना होगा कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करके जो रिज़ल्ट हम लेना चाह रहे हैं वह मिलने वाला भी है या नहीं? अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने के लिए आदमी को वक़्त, पैसा, ताक़त सब कुछ लगाना होता है इसलिए ज़रूरी है कि पहले यह देख लिया जाए कि क्या यह ऐसी जगह है जहाँ अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने का फ़ाएदा या असर होगा? यह एक ऐसा काम है जिसमें हमें कारोबारी सोच के साथ आगे बढ़ना होगा जिस तरह कोई भी कारोबारी जब कहीं अपनी पूँजि लगाता है तो पहले वह यह देख लेता है कि जिस काम में वह पूँजि लगा रहा है उससे होने वाली आमदनी उसकी असली पूँजि से ज़्यादा होगी या नहीं। इस्लामी हिसाब से ऐसा सोचना और करना बिल्कुन ठीक है और कहीं से कहीं तक ग़लत नहीं है।

अब सवाल यह है कि अगर हम ऐसी जगह पर अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करना चाहते हों जहाँ हमारी जान, माल या वक़्त लग रहा है और हमें पता है कि अगर हम अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करेंगे तो कोई फ़ाएदा नहीं होगा या उल्टा असर होगा तो क्या हम ऐसी जगह पर भी अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करें?

नहीं! बिल्कुल नहीं और यह बात भी पूरी तरह से ठीक है क्योंकि हमारी अक़्ल भी हम से यही कहती है कि जहाँ अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने में कोई भलाई न दिख रही हो वहाँ मत करो।

मगर ख़्वारिज[1] के हिसाब से अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर अल्लाह का एक ऐसा हुक्म है जो हमें अपनी आँखें बंद करके हर हाल में पूरा करना है यानी आदमी को इतनी छूट ही नहीं दी गई है कि वह इस काम में अपनी समझ का इस्तेमाल करे बल्कि उसे आँखें बंद करके अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करना है चाहे उसे यह भी पता हो कि उसकी जान, माल या वक़्त बेकार हो जाएगा और कुछ हाथ नहीं आएगा। ख़्वारिज कहते हैं कि इन सारी बातों से हमें कोई मतलब नहीं है क्योंकि अल्लाह ने हुक्म दिया है कि तुम्हें हर हाल में अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करना है।

इसके उलट हमारे इमामों ने हमें बताया है कि ऐसा सोचना और ऐसा करना सिरे से ग़लत है क्योंकि अल्लाह ने ऐसे अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर का हुक्म दिया ही नहीं है।

अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने से पहले ज़रूरी है कि पूरी तरह से हिसाब-किताब लगा लिया जाए और सोच-समझ लिया जाए कि असर होगा भी या नहीं और अगर होगा तो कितना या कैसा असर

---

[1] ख़्वारिज वह लोग थे जिनसे हज़रत अली[अ०] ने जंग की थी। हज़रत अली[अ०] ने अपनी हुकूमत में तीन जंगें की थीं जिनमें से एक इन्हीं ख़्वारिज के साथ थी। यह वह लोग थे जो अपने आप को कहते तो मुसलमान ही थे मगर इनके सारे काम इस्लाम के उलट होते थे। बड़े से बड़े मुसलमान की तरह इबादतें किया करते थे, रातों में जाग-जागकर अल्लाह को याद करके रोया करते थे, अच्छे काम करने में भी पीछे नहीं रहते थे यानी दिखने में बड़े पक्के मुसलमान थे मगर इन लोगों ने इस्लाम के बिल्कुल उलट अपनी सोच बना रखी थी।

होगा। समाजी मामलों की स्टडी करने वाले उलमा ने लिखा है कि ख़्वारिज के सीधे रास्ते से भटकने की असली वजह यही थी कि उन्होंने अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के बारे में सोच-समझकर क़दम उठाना बंद कर दिया था। इन लोगों का हाल यह था कि अगर किसी को कोई भी ग़लत काम करते देखते थे तो फ़ौरन उसे टोकने और समझाने बैठ जाते थे, चाहे सामने वाले के हाथों में तलवार ही क्यों न खिंची हुई हो। वह जानते थे कि यहाँ कुछ कहने- सुनने में कोई भलाई नहीं है मगर इसके बाद भी समझाने बैठ जाते थे। ज़ाहिर है कि जिसके हाथ में तलवार हो और जिसकी आँखों में ख़ून उतरा हुआ हो वह एक झटके से गर्दन उड़ा देगा और ऐसा ही होता था। ख़्वारिज के पास कोई हिसाब-किताब, सोच-समझ या समझदारी नहीं थी यानी बिना सोचे-समझे ही मैदान में कूद पड़ते थे। जिसका रिज़ल्ट यह निकला कि जल्दी ही उनकी नस्ल मिट गई।

असल में अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर एक तरह की जंग है और ज़ाहिर है कि जंग में तभी कामयाबी मिल सकती है जब जंग करने वाले का डिफ़ेंसिव सिस्टम भी मज़बूत हो यानी हमला तो करना है मगर यह भी ध्यान रखना है कि सामने वाले के हमले से बचना भी है। अब अगर कोई कहे कि मेरे ऊपर जिहाद वाजिब है मगर न उसके हाथ में हथियार हों और न उसने अपने बचाव के लिए कुछ किया हो, फिर यह भी कहे कि अगर मैं मारा गया तो क्या सीधा जन्नत में नहीं जाऊँगा? ज़ाहिर है कि यह बेतुका सवाल है। इस्लाम कहता है कि ऐसा काम मत करो क्योंकि तुम इस्लाम की ताक़त हो और यह ताक़त इस्लाम के नाम पर जंग के मैदान में ख़र्च होना चाहिए इसलिए आगे

बढ़ो और हमला करो मगर सामने वाले के हमले से ख़ुद को बचाने का ध्यान भी रखना। अगर हथियारों के बिना मैदान में गए और हथियार न होने की वजह से तुम ने अपनी जान दे दी तो तुम ने असल में इस्लाम की ताक़त को बर्बाद किया है। इसलिए ऐसा काम मत करो। आगे बढ़ो, हमला करो मगर जितना हो सके अपने आप को भी बचाओ। सामने वाले के छक्के छुड़ा दो मगर अपने आप को भी बचाए रखो। यह वह बात है जो हमारे उलमा ने कही है और बिल्कुल ठीक कही है।

ताक़त का होना भी ज़रूरी है

हदीसों में यह भी है कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर उस आदमी पर वाजिब है जिसके पास ताक़त हो यानी जो आदमी अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर कर ही न सकता हो उस पर अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर वाजिब ही नहीं है। यह भी इसीलिए है ताकि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर से जो रिज़ल्ट चाहिए वह मिल जाए। अगर जो रिज़ल्ट चाहिए वह न मिल रहा हो तो अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने का फ़ाएदा ही क्या होगा? यह वही चीज़ है जो ऊपर कही गई थी कि हमला करो मगर अपने आप को भी बचाते रहो। इसी तरह यहाँ भी है कि बस तभी आगे बढ़ो जब नतीजा मिल रहा हो और अगर नतीजा न मिल रहा हो तो पीछे हट जाओ यानी अपनी ताक़त को बचाओ, बर्बाद न करो।

एक बहुत बड़ी ग़लती

इस बीच एक बहुत बड़ी ग़ल्ती भी दोहराई जा रही है और वह यह कि हो सकता है कोई कहे कि इस्लाम ने कहा कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने की ताक़त न हो तो मत करो और मेरे पास ताक़त है ही नहीं, इसलिए मेरे ऊपर तो कुछ भी वाजिब नहीं है या हो सकता है कि कोई कहे कि इस्लाम ने कहा है कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर बस उस वक़्त करना है जब तुम्हें लग रहा हो कि सही नतीजा मिल सकता है और मुझे ऐसा बिल्कुल नहीं लग रहा है कि नतीजा मिल पाएगा, इसलिए मेरे ऊपर भी कुछ वाजिब नहीं है।

यह दोनों लोग ग़लत सोच रहे हैं और दोनों ही ग़ल्ती कर रहे हैं।

आएइ! एक दूसरे इस्लामी क़ानून पर बात करते हैंः

इस्लाम कहता है कि अगर तुम्हें किसी चीज़ के बारे में शक हो कि वह पाक है या नजिस और तुम्हें लग रहा हो कि पाक हो सकती है तो उसे पाक मान लो। जैसे मान लीजिए कि बाहर से कोई दवाई आई है लेकिन हमें उसके नजिस होने का भरोसा नहीं है यानी 99% लग रहा है कि नजिस है और 1% लग रहा है कि पाक भी हो सकती है। इस्लाम कहता है कि इस दवाई को पाक माना जाएगा। क्या ज़रूरी है कि नजिस या पाक का पता लगाने के लिए छान-बीन या रिसर्च की जाए? बिल्कुल नहीं! छान-बीन करने की कोई ज़रूरत नहीं है।

नजिस-पाक से जुड़ा यह इस्लामी क़ानून एक ज़ेहनी क़ानून है यानी आदमी अपने घर के अंदर बैठे-बैठे ही तय कर सकता है कि वह चीज़ नजिस है कि पाक।

अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर में इसके बिल्कुल उलट मामला है। यह नहीं हो सकता कि आदमी अपने घर के दरवाज़े पर बैठे-बैठे ही कह दे कि मुझे अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने का असर दिख रहा है या नहीं दिख रहा है। यहाँ नजिस-पाक जैसा मामला नहीं है। अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के मामले में कोशिश करना ज़रूरी है। कम से कम छान-बीन तो करना ही होगी ताकि पता चल जाए और समझ में आ जाए कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने से जो नतीजा चाहिए वह मिलेगा या नहीं। अगर किसी को तो पता ही न हो और वह यह जानने के लिए अपने हाथ-पैर भी न हिलाए कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर से नतीजा मिलेगा भी या नहीं तो इस्लामी हिसाब से ऐसे आदमी ने अपनी इस्लामी ड्युटी पूरी नहीं की है। इसी तरह उस आदमी का भी मामला है जो कहता है कि मेरे पास अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने की ताक़त ही नहीं है। इस्लाम कहता है कि तुम घर के अंदर बैठे-बैठे ही अपने दिमाग़ में फ़ैसला नहीं कर सकते कि ताक़त नहीं है। अगर तुम्हारे पास ताक़त नहीं है तो उठो और ताक़त पैदा करो। हाँ! जब तक अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने की ताक़त नहीं है तब तक वाजिब नहीं है लेकिन अगर ताक़त नहीं है तो ताक़त पैदा करना होगी ताकि जो नतीजा चाहिए वह मिल जाए।

ज़ालिम हुकूमतों की बात मानना

हमारे इमामों से एक सवाल बहुत किया जाता था। लोग आते थे और आकर पूछा करते थे कि ऐ अल्लाह

के रसूल[स०] के बेटे! यह हुकूमत ज़ालिम है और ख़लीफ़ा भी ज़ालिम है। क्या इस हुकूमत में हम सरकारी नौकरी कर सकते हैं? जवाब मिलता था कि नहीं! सरकारी नौकरी नहीं कर सकते लेकिन उसके बाद इमाम फ़रमाते थे कि अगर इस नौकरी से तुम्हारे अंदर इतनी ताक़त आ रही है कि तुम अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर कर सको तो फिर यह नौकरी ज़रूर करो। अपने आप में यह काम हराम है लेकिन अगर इस काम से तुम्हारे हाथ में ताक़त आ रही हो और इस ताक़त के बल पर अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर किया जा सकता हो तो फिर हराम नहीं बल्कि वाजिब है जैसे अली बिन यक़तीन इमाम के सहाबी थे लेकिन हारून रशीद जैसे ज़ालिम ख़लीफ़ा के दरबार में नौकरी करते थे। बस फ़र्क़ यह है कि कुछ उलमा ने इस काम को वाजिब बताया है और कुछ ने मुस्तहब[1]।

मोहम्मद बिन इस्माईल बिन बज़ीअ् और अली बिन यक़तीन दोनों ही इमाम मूसा काज़िम[अ०] के सहाबी थे मगर इस्लामी मिशन को आगे बढ़ाने के लिए उस वक़्त की ज़ालिम हुकूमत में नौकरी भी करते थे। इमाम मूसा काज़िम[अ०] ने इन दोनों के बारे में फ़रमाया था कि तुम दोनों ज़मीन पर अल्लाह के सितारे हो क्योंकि तुम हुकूमत में माल-दौलत कमाने या ऊँची जगह पाने के लिए नहीं गए हो बल्कि इस्लाम के मिशन को आगे बढ़ाने के लिए उनके साथ काम कर रहे हो।

यहीं से यह बात भी समझ में आ जाती है कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने के लिए ताक़त जमा करना कितना ज़रूरी है। यह काम इतना ज़रूरी है कि इस्लाम कहता है कि अगर अम्र बिल

---

[1] वाजिब काम को करना ज़रूरी होता है लेकिन मुस्तहब काम को करना ज़रूरी नहीं होता है।

मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर बीच में आ जाए तो 100% हराम काम भी किया जा सकता है। जो अपने आप में हराम था यानी ज़ालिम हुकूमत का साथ देना और जिस काम से कहीं से कहीं तक अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर नहीं हो रहा था वह हराम था और हराम रहेगा लेकिन अगर वही काम अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने में सहारा बन जाए तो हराम होने से बाहर निकल जाएगा और वाजिब में बदल जाएगा और कुछ उलमा के हिसाब से मुस्तहब में बदल जाएगा। कम से कम इतना तो तय है कि अगर हराम वाजिब में न बदले तो मुस्तहब में तो ज़रूर बदल जाएगा।

इसका मतलब यह है कि ताक़त होने या न होने का मतलब यह नहीं है कि अगर बैठे-बिठाए कहीं से ताक़त मिल जाए तो अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर किया जाए और अचानक ताक़त न मिल सके तो न किया जाए बल्कि अगर ताक़त नहीं है तो उसे पाना होगा।

इस्लाम में अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर की जगह

अगर कोई जानना चाहता है कि इस्लाम में अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर की जगह कहाँ पर है तो उसे किताब *फ़ुरूए काफ़ी* की यह हदीस पढ़ना चाहिए जो हमारी बहुत ही भरोसेमंद हदीसों में से है और हदीस की सारी किताबों में लिखी हुई है। यह हदीस बहुत लम्बी है इसलिए हम यहाँ बस इस हदीस के शुरू के छोटे से टुकड़े पर ही बात करेंगे।

इमाम मोहम्मद बाक़िर[अ०] फ़रमाते हैं:

आख़िरी ज़माने में कुछ ऐसे लोग पैदा होंगे जो दूसरों को दिखाने के लिए हर वक़्त क़ुरआन व दुआएं पढ़ा करेंगे, बढ़-चढ़कर दीन की बातें करेंगे और दीनदारी का पूरा दावा करेंगे। यह लोग हर काम कर रहे होंगे मगर बस एक काम नहीं करेंगे और वह होगा अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुन्कर। जब तक इन लोगों को यह भरोसा नहीं हो जाएगा कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर से इन्हें कोई घाटा नहीं होगा या नुक़सान नहीं पहुँचेगा तब तक वह अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर नहीं करेंगे। उन लोगों की बस एक कोशिश होगी कि किसी तरह अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर न करना पड़े। अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर से बचने के लिए वह लोग बहानों पर बहाने ढूँढा करेंगे। यह लोग ऐसी इबादतों का पीछा करेंगे जिनमें न उनकी जान जाएगी और न माल जैसे नमाज-रोज़ा लेकिन ऐसी इबादत के आसपास भी नहीं फटकेंगे जिसमें इनकी जान या माल को किसी तरह का कोई ख़तरा हो। यहाँ तक कि अगर नमाज़ से भी उनकी जान, माल या इज़्ज़त-आबरू को कोई नुक़सान पहुँचने वाला होगा तो वह नमाज़ को भी छोड़ देंगे। जिस तरह यह लोग अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर जैसी मुक़द्दस[1] इबादत को छोड़ देंगे उसी तरह नमाज़ को भी छोड़ देंगे जबकि अम्र बिल मारूफ़ और

[1] पवित्र

> नही अनिल मुन्कर वह इस्लामी क़ानून है जिस पर दूसरे सारे क़ानून टिके हुए हैं क्योंकि अगर अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर होगा तभी नमाज़, रोज़ा, हज, इस्लामी क़ानून, इस्लामी समाज और इस्लामी अख़लाक़[1] जैसी चीज़ें बची रह पाएंगी।

फिर हदीस के आख़िर में इमाम बाक़िर[अ०] फ़रमाते हैंः

> बेशक! अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर अल्लाह के नबियों का रास्ता है, अल्लाह के अच्छे बन्दों का तरीक़ा है, इस पर दूसरे इस्लामी क़ानून टिके हुए हैं, रास्तों में इसी के वजह से अमन-शांति बनी रह सकती है, रोज़ी-रोटी इसी की वजह से हलाल होती है, लोगों का माल इसी की वजह से उन तक वापस पहुँचता है और ज़मीन इसी की वजह से उपजाऊ होती है।[2]

इसी एक हदीस से समझ में आ जाता है कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर की सीमाएं कितनी दूर-दूर तक फैली हुई हैं, इतनी दूर तक कि ज़मीनें भी इसी के बल पर उपजाऊ होती हैं। अगर हम अपने इस्लामी इतिहास को उठाकर देखें तो हमें ऐसी-ऐसी चीज़ें देखने और पढ़ने को मिलती हैं कि दिल ख़ून होकर रह जाता है कि हम क्या थे और अब क्या होकर रह गए हैं। मशहूर आलिम *मावरदी* ने एक किताब लिखी थी जिसका नाम था *अल-अहकाम अल-सुल्तानिया* जो इस्लामी किताबों में एक बहुत अच्छी किताब है और जिस पर युरोप वालों ने बड़ा काम किया है। इस किताब

---

[1] आचार-सदाचार

[2] फ़ुरूए काफ़ी, 5/55

में अब से हज़ार साल पहले ही इस्लाम के समाजी सिस्टम पर बात की गई थी और इस्लाम के समाजी सिस्टम को बड़ी अच्छी तरह से समझाया गया था। इस किताब को पढ़कर आसानी से समझ में आ जाता है कि मुस्लिम जगत में उस वक़्त कितना मज़बूत समाजी सिस्टम पाया जाता था और उस दौर में अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर किसे कहते थे और समाज में इसकी कितनी ऊँची जगह थी। इस से भी बड़ी किताब *मआलिमुल क़ुरबा फ़ी अहकामिल हिस्बा* है और अच्छी बात यह है कि एक अंग्रेज़ ने तुर्की की एक लाइब्रेरी से निकाल कर इस किताब को छाप दिया है। इस किताब को पढ़ने से पूरी तरह से समझ में आ जाता है कि उस दौर में अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर का क्या मतलब था। यही किताब हमें बताती है कि उस ज़माने में अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर ने समाज को पूरी तरह से अपने घेरे में ले रखा था। आज शहरों में म्युनिस्पल कार्पोरेशन जितने भी काम करता है वह सब उस वक़्त अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के अंदर आते थे। इसी किताब में यह भी लिखा हुआ है कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करने वाला जब किसी दुकान पर जाकर देखता था कि दही का बर्तन खुला हुआ रखा है तो उसकी ड्युटी यह भी होती थी कि वह उस दुकानदार से कहे कि इस बर्तन को ढक कर रखो ताकि इसके ऊपर मक्खियाँ न बैठें, वह दुकानदार के कपड़े भी देखता था कि कहीं गंदे तो नहीं हैं और उससे कहता था कि हर दो-तीन दिन में कपड़े बदला करो। मस्जिदों में क्या किया जाए, सड़कों पर क्या किया जाए... हर चीज़ का हिसाब-किताब रखा जाता था। जब आदमी इन सारी बातों को पढ़ता है तो दंग रह जाता है कि ऐ अल्लाह!

एक वह वक़्त था जब हम इतने अच्छे समाजी सिस्टम के साथ जी रहे थे और एक यह वक़्त है कि हम तरह-तरह की मुसीबतों में फंसे हुए हैं। ऐ अल्लाह! हम वही हैं कि हमारी किताब *फ़ुरूए काफ़ी* की हदीसों में लिखा हुआ है कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर एक ऐसा सिस्टम है जो ज़मीनों को भी उपजाऊ बना देता है या जिससे दुश्मनों से बदला लिया जा सकता है और इसका मतलब बस यही है कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर को समाज में फैलाया जाए ताकि दुश्मन का मुक़ाबला किया जा सके।

सोचने की बात है कि जिस हुक्म पर इस्लाम इतना ज़ोर दे रहा है और जिसकी इस्लाम में इतनी ऊँची जगह है क्या उस हुक्म के बारे में कोई यह बात मान सकता है कि इस्लाम ने कहा है कि अगर कभी अचानक तुम्हारे हाथ में ताक़त आ जाए तो अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर करो और अगर ताक़त न हो तो करने की कोई ज़रूरत नहीं है। सच्ची बात यह है कि अगर समाज से अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर मिट गया तो इस्लाम भी मिट जाएगा क्योंकि जिस अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर की बात इस्लाम कर रहा है उसी पर इस्लाम की बुनियाद रखी हुई है। जब ऐसा है तो फिर कैसे हो सकता है कि इस्लाम कह दे कि अगर इस्लाम की मदद करने की ताक़त रखते हो तो मदद करो वरना कोई ज़रूरत नहीं है और अगर तुम कुछ कर ही नहीं सकते तो आराम से बैठे तमाशा देखते रहो।

इसी तरह अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर का असर होने या न होने का मामला भी है। यह नहीं हो सकता कि आदमी अपने घर के अंदर बैठा रहे और सोचता रहे कि मुझे नहीं लगता कि असर होगा। इस्लाम

कहता है कि तुम्हें इस बात की छूट नहीं है कि तुम बैठे-बैठे ही फ़ैसला कर लो कि असर होगा या नहीं होगा। जब तुम्हें हालात के बारे में पता ही नहीं है, जब अभी तुम ने कुछ सोचा-समझा ही नहीं है, जब तुम्हें अपने आसपास की ख़बर ही नहीं है, जब तुम जानते ही नहीं हो कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर कैसे किया जाता है, जब तुम्हें पता ही नहीं है कि लोगों और समाज को कैसे बदला जाता है तो फिर कैसे कह सकते हो कि मुझे लगता है कि अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर का कोई असर होगा या नहीं होगा।

यह हैं वह दो बुनियादी चीज़ें जो अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर के लिए बहुत ज़रूरी हैंः एक ताक़त और दूसरी हालात की समझ-बूझ। इन दोनों को एक साथ लेकर चलना है और अगर ऐसा नहीं हुआ तो जो नतीजा लेना है वह नहीं मिलेगा।

अमेरिका में 380 से ज़्यादा ऐसी कमेटियाँ हैं जो यहूदियों की मदद करने के लिए पैसा इकट्ठा करती हैं। इस हिसाब से इन लोगों की तारीफ़ करना चाहिए कि यह लोग सोए हुए लोग नहीं हैं बल्कि पूरी तरह से जाग रहे हैं। अपने लिए काम कर रहे हैं क्योंकि इन लोगों को पता है कि कामयाबी का रास्ता बस यही है। यह लोग जानते हैं कि किसी भी जगह, किसी भी शहर में या किसी भी मोहल्ले में जहाँ-जहाँ लोग रहते हैं सब की ड्युटी है कि आपस में मिल-बैठ कर सोचें-समझें और आगे की तैयारी करें, हालात को समझने के लिए जानकारी लें और जो कुछ आगे आने वाला है उस पर सोच-विचार करें। यही जानकारी है और जानकारी का पता लगाना हम सब पर वाजिब है। यही ताक़त है और ताक़त हासिल करना भी वाजिब है।

करबला में और करबला के बाद भी अहले हरम (अल्लाह के रसूल[स०] के घर वालों) ने जहाँ–जहाँ हो सकता था वहाँ–वहाँ अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर किया था। आयतुल्लाह आयती ने एक किताब *बर्रसी-ए-तारीख़े आशूरा* लिखी थी। करबला के बारे में अब तक जिनती भी किताबें लिखी गई हैं उन में से यह एक अच्छी किताब है। इस किताब में आयतुल्लाह आयती ने साबित किया है कि करबला और करबला के इतिहास को अहले हरम[अ०] ने ही बचाया है। इस किताब में उन्होंने यह भी लिखा है कि यज़ीद और उसकी सरकारी मशीनरी की सब से बड़ी ग़ल्ती इमाम हुसैन[अ०] और उनके साथियों की शहादत के बाद अहले हरम[अ०] को क़ैदी बनाना और फिर कूफ़ा व शाम ले जाना था। अगर उन लोगों ने यह काम न किया होता तो शायद वह करबला के इतिहास को छुपा ले जाते या कम से कम उसको थोड़ा–बहुत बदल लेते लेकिन उन्होंने ख़ुद अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली और अहले हरम[अ०] को क़ैदी बनाकर करबला से कूफ़ा और कूफ़े से शाम के बीच इतना मौक़ा दे दिया कि करबला का इतिहास आज तक जगमगा रहा है। यज़ीद को इस बात का अंदाज़ा ही नहीं था कि मुसीबत व दुखों में डूबी हुई यह कुछ औरतें और बच्चे सारे हालात को ही बदल देंगे। यज़ीद ही क्या बल्कि किसी को भी नहीं पता था कि यह लोग हालात का धारा ही बदल देंगे।

इमाम सज्जाद[अ0] यज़ीद के दरबार में

जुमे का दिन था और शाम की मस्जिद में जुमे की नमाज़ होना थी। नमाज़ पढ़ना यज़ीद की मजबूरी थी और शायद वही नमाज़ भी पढ़ाता था। हम सभी जानते

हैं कि नमाज़े जुमा से पहले दो ख़ुतबे होते हैं और उसके बाद जुमे की नमाज़। जुमे के दिन नमाज़े जुमा की वजह से ज़ोह्र की नमाज़ अपने आप साक़ित (ख़त्म) हो जाती है और वह इस तरह कि जुमा की नमाज़ के दोनों ख़ुतबे ज़ोह्र की नमाज़ की पहली दो रकअतों के बदले में होते हैं और दूसरी दो रकअतों की जगह नमाज़े जुमा ले लेती है।

बहरहाल नमाज़े जुमा पढ़ाने के लिए शाम की मस्जिद का सरकारी इमाम नमाज़े जुमा पढ़ाने और ख़ुतबे देने के लिए आ चुका था। मिम्बर पर पहुँचकर पहले उसने वही सब कुछ कहा जो कुछ उससे बोलने के लिए कहा गया था और उसके बाद यज़ीद और उसके बाप की जितनी तारीफ़ हो सकती थी उतनी तारीफ़ भी की। दुनिया में जो-जो अच्छा काम या अच्छी बात हो सकती है वह सब उसने उन दोनों से जोड़ दी थी और उसके बाद इमाम अली[अ०] व इमाम हुसैन[अ०] को बुरा-भला कहने लगा था। उसने अपनी बकवास में यह तक कह दिया था कि यह बाप-बेटे इस्लाम से बाहर निकल गए थे (अल्लाह माफ़ करे) और इन दोनों ने ऐसा किया-वैसा किया। इमाम सज्जाद[अ०] मिम्बर के पास ही बैठे हुए थे। जैसे ही इमाम ने उसकी यह सब बातें सुनी तो फ़ौरन वहीं से उस सरकारी इमाम को घूर कर बोले के ऐ ख़तीब! तूने लोगों को ख़ुश करने के लिए अल्लाह का ग़ज़ब (ग़ुस्सा) ख़रीद लिया है। उसके बाद इमाम सज्जाद[अ०] ने यज़ीद से कहा कि क्या मैं इन लकड़ियों पर जाकर कुछ कह सकता हूँ? (ध्यान देने की बात यह है कि इमाम ने मिम्बर नहीं कहा। अहलेबैत[अ०] इन सारी बातों का बड़ा ध्यान रखते थे। यहाँ तक कि इमाम ने यज़ीद के दरबार में भी उसे *ऐ अमीरूल मोमिनीन* या *ऐ मुसलमानों के ख़लीफ़ा* नहीं कहा था बल्कि सीधे उसका नाम लेकर उसे

पुकारा था कि ऐ यज़ीद और ऐसा बस इमाम सज्जाद[अ०] ने ही नहीं किया था बल्कि जनाबे ज़ैनब[स०] भी ने यही काम किया था। अब यहाँ मस्जिद में भी इमाम ने उसे सब के सामने सिर्फ़ *यज़ीद* ही कहकर पुकारा था। साथ ही यह भी नहीं कहा था कि क्या मैं मिम्बर पर जाकर कुछ बातें कह सकता हूँ बल्कि इसकी जगह कहा था कि क्या मैं इन लकड़ियों पर जाकर कुछ कह सकता हूँ क्योंकि इमाम सज्जाद[अ०] उसे मिम्बर मान ही नहीं रहे थे।) इमाम सज्जाद[अ०] ने पूछा तो यज़ीद ने मना कर दिया लेकिन जो लोग उसके आसपास बैठे हुए थे उन्हें पता था कि अली बिन हुसैन[अ०] हिजाज़ी हैं और वह यह भी जानते थे कि हिजाज़ वालों की ज़बान दूसरे सब लोगों से अच्छी होती है, इसलिए उन सब ने मिलकर यज़ीद से कहा कि ऐ अमीरूल मोमिनीन! क्या फ़र्क़ पड़ता है, अगर यह आदमी कुछ कहना चाहता है तो कह लेने दीजिए लेकिन यज़ीद ने इजाज़त नहीं दी। उसके बाद यज़ीद का बेटा भी आगे बढ़ा और उसने कहा कि बाबा! इजाज़त दे दीजिए ना क्योंकि मैं भी देखना चाहता हूँ कि हिजाज़ वाले कैसे तक़रीर[1] करते हैं। यज़ीद ने कहा कि नहीं! मुझे इन लोगों से डर है मगर यज़ीद पर इतना दबाव पड़ा कि वह मजबूर हो गया और उसने दबे दिल के साथ इमाम सज्जाद[अ०] को मिम्बर पर जाकर कुछ कहने की इजाज़त दे दी।

ख़ास बात यह है कि एक तरफ़ तो इमाम सज्जाद[अ०] उस वक़्त बीमार थे (वैसे बाद में बिल्कुल ठीक हो गए थे और उनके और दूसरे इमामों के बीच कोई फ़र्क़ नहीं था) और दूसरी तरफ़ से यज़ीद की क़ैद में भी थे। फिर क़ैदी भी ऐसे कि उन ज़ंजीरों और बेड़ियों के साथ ही

[1] भाषण

करबला से कूफ़ा और फिर कूफ़े से अब शाम पहुँचे थे। जैसे ही इमाम सज्जाद[अ०] मिम्बर पर गए वैसे ही सारा माहौल एकदम से बदल गया। हालत यह थी कि यज़ीद अपना सर भी नहीं उठा पा रहा था और सोच रहा था कि अब किसी भी पल लोग एक साथ मेरे ऊपर हमला बोल देंगे और मेरी जान ले लेंगे। इसलिए उसने फ़ौरन एक चाल चली और मोअज़्ज़िन[1] से कहा कि जल्दी से अज़ान देना शुरू कर दो। जैसे ही अज़ान की आवाज़ आई वैसे ही इमाम सज्जाद[अ०] ठहर गए। मोअज़्ज़िन ने कहाः *अल्लाहु अकबर, अल्लाहु अकबर,* इमाम सज्जाद[अ०] ने भी *अल्लाहु अकबर, अल्लाहु अकबर* दोहराया। मोअज़्ज़िन ने कहाः *अश्हदु अल्ला इलाहा इल-लल्लाह, अश्हदु अल्ला इलाहा इल-लल्लाह*। इमाम सज्जाद[अ०] ने भी दोहराया। फिर जैसे ही मोअज़्ज़िन ने कहाः *अश्हदु अन्ना मोहम्मदर रसूलुल्लाह!* फ़ौरन ही इमाम सज्जाद[अ०] ने कहा कि ऐ मोअज़्ज़िन! ज़रा ठहर जाओ! फिर इमाम सज्जाद[अ०] ने यज़ीद की तरफ़ देखते हुए कहा कि ऐ यज़ीद! अभी अज़ान में जिसका नाम लिया गया है और जिसकी रिसालत की तुम भी गवाही दे रहो हो, यह कौन है? ऐ लोगो! तुम ने हम लोगों को क़ैदी बना रखा है लेकिन क्या तुम्हें पता है कि हम सब कौन हैं? क्या तुम जानते हो कि मेरे बाबा कौन थे जिन्हें तुम ने शहीद कर दिया है? और वह कौन है जिसकी रिसालत की गवाही अभी अज़ान में तुम ने दी है?

अभी आशूरा को बीते कोई बहुत टाइम नहीं हुआ था और लोगों को ज़्यादा कुछ पता भी नहीं था कि करबला में क्या कुछ हो गया है।

---

[1] अज़ान देने वाला आदमी

यह इमाम सज्जाद[अ०] और जनाबे ज़ैनब[स०] के ख़ुतबों और कोशिशों का नतीजा ही था कि आगे चलकर यज़ीद ने मजबूर होकर हुक्म दे दिया था कि सब लोगों को क़ैदख़ाने[1] से आज़ाद कर दिया जाए और पूरी इज़्ज़त के साथ जाने दिया जाए। नौमान बिन बशीर थोड़ा-बहुत ठीक और हमदर्द आदमी था, इसलिए यज़ीद ने उसी को इस काफ़िले के साथ भेजा था और उससे यह भी कह दिया था कि पूरी हमदर्दी के साथ इन लोगों को शाम से मदीने तक लेकर जाओ।

यज़ीद ऐसा क्यों कर रहा था? क्या यज़ीद बदल गया था? क्या उसे अपने किए पर पछतावा हो रहा था? बिल्कुल नहीं। ऐसा कुछ भी नहीं था बल्कि यज़ीद तो वैसे का वैसा ही था, बस उसके आसपास की दुनिया बदल गई थी यानी लोग बदल गए थे। हालात ऐसे हो गए थे कि यज़ीद दिखावे के लिए इब्ने ज़ियाद को भी बुरा-भला कहने लगा था और यह भी कहता था कि मैंने कुछ नहीं किया है बल्कि यह सब कुछ इब्ने ज़ियाद ने किया है। यज़ीद सिरे से अपनी बात से ही मुकर गया था और कहता फिरता था कि मैंने ऐसा कोई आर्डर ही नहीं दिया था बल्कि करबला में जो कुछ हुआ है वह सब इब्ने ज़ियाद ने अपने आप से किया है।

अब यज़ीद यह सब क्यों कह रहा था और कर रहा था? ज़ाहिर है कि यज़ीद यह सब इसीलिए कह रहा था क्योंकि इमाम सज्जाद[अ०] और जनाबे ज़ैनब[स०] ने हालात का धारा पूरी तरह से मोड़ दिया था।

*****

---

[1] जेल